ओ३म्

महीयसी संस्थापिका
डॉ० प्रज्ञा देवी जी

महर्षि पाणिनि-प्रभा

महीयसी संस्थापिका
अनुजा-आचार्या मेधा देवी

सृष्टि संवत् १,९७,२९,४९,११२ | संयुक्तांक जुलाई–सितंबर, २०११ | वर्ष ५, अंक–३ | आषाढ़–भाद्रपद, वि.सं. २०६८

सम्पादिका
आचार्या नन्दिता चतुर्वेदी
मो०- 9235539740

◆

सहसंपादिका
डा० प्रीति विमर्शिनी
मो०- 9235604340

◆

प्रकाशक
पाणिनि कन्या महाविद्यालय
पो०- महमूरगंज, तुलसीपुर,
वाराणसी– 221010 (उ0प्र0)
फोन : (0542) 6452340
6544340

◆

पत्रिका मूल्य
एक प्रति : 25/-
वार्षिक : 150/-
आजीवन : 1500/- (दस वर्ष)

प्रभा–रश्मय:

1. **वेद-वाणी–** भग को प्राप्त कर भगवान् तक पहुँचें – आचार्या नन्दिता चतुर्वेदी 2–5
2. **सम्पादकीयम् –** तमसो मा ज्योतिर्गमय – आचार्या नन्दिता शास्त्री 6–8
3. **इतिवृत्तम् –** – डा. प्रीति विमर्शिनी 9–14
4. **आपके पत्र –** –15
5. **वेद और विज्ञान –** – पं. सूर्यबली पाण्डेय 16-21
6. **वन्दे गुरुकुलमातरम –** –डा० प्रतिभा पुरन्धि 22–23
7 **शास्त्र ज्ञान के साथ .... –** – प्रमोद यादव 24–25
8. **वेदार्थरक्षण में कल्प .... –** – डा० प्रियंवदा वेदभारती 26–30
9. **स्वतन्त्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका** – आशा रानी व्होरा 31–32
10. **सामान्य रोगों की सरल चिकित्सा –** – डा. अजीत मेहता 33–34
11. **दु:खद अवसान –** –35
12. **हम भारत से क्या सीखें –** – प्रो. मैक्समूलर 36–38
13. **अर्जुनरावणीयम् –** – डा0 विजयपाल शास्त्री 39–40

◆

वेद-वाणी

भग को प्राप्त कर भगवान् तक पहुँचें–

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु॥

(यजु. 11/7,30/1)

यह मन्त्र यजुर्वेद का है। यजुर्वेद कर्म का प्रतिपादक वेद है। वेद में कर्म के प्रेरक देव के रूप में सविता देव को सम्बोधित किया जाता है, उससे प्रार्थना की जाती है। सविता देव सूर्य को कहते हैं जो कि नियमित रूप से प्रातःकाल उदित होकर सबको कर्म में प्रेरित करता है साथ ही प्रतिदिन सायंकाल अस्त होकर सबको कर्म से निवृत्त होने की प्रेरणा भी देता है। इस सविता देव का भी प्रेरक सर्वप्रेरक वह परमात्मा है इसलिये यथार्थ में वही सविता देव है। इसीलिए मन्त्रों में सविता देव से सूर्य तथा परमप्रभु का ग्रहण होता है। यजुर्वेद के पहले ही मन्त्र में- **देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे**- वह सविता देव हमें श्रेष्ठतम कर्म करने के लिए प्रेरित करे यह कहा है। वह श्रेष्ठतम कर्म क्या है? इसका प्रतिपादन भी इसी यजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण में **यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म** (श.ब्रा. 1/7/15) कहकर यज्ञ को ही संसार का सर्वोत्तम श्रेष्ठतम कर्म बताया है। इसी वेद के अनेक मन्त्रों में बार-बार **देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे** अर्थात् सविता देव की प्रसव= आज्ञा में रहकर हम विभिन्न कर्मों को यज्ञों को सम्पादित करें यह कहा है। प्रकृत मन्त्र में उसी सविता देव से प्रार्थना की गई है कि–

हे **देव सवितः**! आप दानादि दिव्य गुणों व हमारे सभी व्यवहारों को सिद्ध करने के कारण देव हैं (दिवु क्रीडा-विजिगीषा-व्यवहार-द्युति-स्तुति-मोद-मद-स्वप्न-कान्ति-गतिषु+अच् =देव) तथा संसार के सभी ऐश्वर्यों के सकल जगत् के उत्पादक (षू प्रसवैश्वर्ययोः) सर्वप्रेरक हैं (षू प्रेरणे) इसलिये सविता हैं। आप हमारे **यज्ञं प्रसुव**-यज्ञ को अपनी प्रेरणा से उत्पन्न करो बढ़ाओ साथ ही **यज्ञपतिं प्रसुव** यज्ञ के स्वामी अथवा रक्षक यजमान को भी उत्पादन क्षमता से युक्त कर उसे प्रजावान्, ऐश्वर्यों का स्वामी बनाओ जिससे वह प्रजा पशु के साथ प्रतिदिन प्रातः-सायं यज्ञ करने की भावना व सामर्थ्य से युक्त हो। किस लिये? तो उत्तर दिया–

भगाय-भग के लिये। भग वह ऐश्वर्य है जो सब के द्वारा समान रूप से भजनीय सेवनीय है (भज सेवायाम्)। उस भग को प्राप्त कर ही वह परमेश्वर के द्वारा प्रतिपादित भजनीय वैदिक आचार-विचार का पालक बन सकेगा तभी वह **भोगापवर्गार्थं दृश्यम्** भोग तथा अपवर्ग (मोक्ष) के लिए रचित इस संसार यात्रा को पूर्ण कर सकेगा। शास्त्रों में भग के छः अर्थ क्रम से इस प्रकार बताये हैं–

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसःश्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा।।

अर्थात् संसार का समस्त ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य इनका नाम भग है। यहाँ इनका क्रमशः उल्लेख इस बात को स्पष्ट करता है कि जीवन में ऐश्वर्य चाहिये, ठीक है किन्तु ऐश्वर्य प्राप्ति का चरम लक्ष्य है धर्म पूर्वक यश तथा श्री से सम्पन्न होकर ज्ञान के द्वारा विवेक पूर्वक वैराग्य को प्राप्त करना मुक्ति का साधन जुटाना अर्थात् उस भग को प्राप्त कर उस पूर्ण ऐश्वर्य के स्वामी, दाता भगवान् को प्राप्त करना। यह आधिभौतिक जगत् से लेकर अध्यात्म तक की साधना, अध्यात्म तक की यात्रा है। भारतीय चिन्तन धारा का यही मूल है। प्रश्न आरम्भ होता है सुख का मूल क्या है, उत्तर देते हैं– धर्म। धर्म का मूल? अर्थ, अर्थ का मूल? राज्य। राज्य का मूल? विनय, विनय का मूल? इन्द्रियजय, इन्द्रियजय का मूल? वृद्ध सेवा, वृद्ध सेवा का मूल? विज्ञान और अन्त में कह दिया **विज्ञानेन आत्मानं सम्पादयेत्** उस विज्ञान से आत्मा को जानो परमात्मा को प्राप्त करो। अर्थात् सुख के खोज की ऐश्वर्य की चरम परिणति आत्मा को प्राप्त करने में है। इस दृश्य भौतिक जगत् के पीछे छिपे उस चेतन सत्य को आनन्दरूप परब्रह्म को जानने में है। इस प्रकार मन्त्र में **यज्ञं यज्ञपतिं प्रसुव, यज्ञ की यज्ञपति की प्रेरणा के पीछे छिपे उद्देश्य भग को प्राप्त कर भगवान् तक पहुँचना यही यज्ञ का और यही मानव जीवन का परम पुरुषार्थ है।** जो कि देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय इतने मन्त्र भाग से सुस्पष्ट हो गया।

आगे मन्त्र में कहा कि हे प्रभु **दिव्यः** तुम दिव्य हो तुम्हारा सान्निध्य मुझे दिव्यता को, पार्थिव शारीरिक चेतना-अन्नमय कोश से ऊपर उठाकर अन्तरिक्षभूत हृदय तथा प्राणवायु का केन्द्र प्राणमय मनोमय कोश से ऊपर द्युलोक स्थानी ज्ञानेन्द्रियों के केन्द्रभूत ज्ञान के आधारभूत मस्तिष्क के विज्ञानमय कोश तक की ऊँचाई को प्रदान करने वाला है और यही नहीं उस द्युलोक की ऊँचाई को प्राप्त कर उसके पृष्ठभाग में स्थित स्वर्ज्योति को जिसे हम स्वर्ग का सुख (आनन्दमय कोश) कहते हैं उस सुख को प्राप्त करने का अधिकारी बनाता है।

पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षा द्दिवमारुहम्। दिवो नाकस्य पृष्ठात्स्व-र्ज्योतिरगामहम्।। (यजु. 17/67) इस यजुर्वेद के मन्त्र का भी यही आशय है।

मन्त्र में उस सविता देव परम प्रभु का दूसरा विशेषण है– **गन्धर्वः** वह गन्धर्व है। **गां धारयतीति गन्धर्वः** जो गौ को धारण करे उसका पोषण करे वह गन्धर्व है। गौ शब्द लोक में केवल गाय पशु का वाचक है जबकि वेद में इस गौ शब्द के अनेक अर्थ हैं। वैदिक शब्द कोश में वाणी, रश्मि, पृथिवी आदि नामों में यह शब्द पढ़ा है। **गच्छतीति गौः** जो गतिशील है उसका नाम गौ है। इस प्रकार गाय, पृथिवी, वाणी, रश्मि, इन्द्रियाँ आदि अपने अपने क्षेत्रों में अपने-अपने विषयों में गतिशील होने से गौ कहे जाते हैं। वह परम प्रभु इन सबका धारक तथा पोषक होने से गन्धर्व कहा जाता है। हम उस प्रभु के **युज्यः सखा** (ऋ. 1/22/19) योग्य मित्र हैं अतः आवश्यक है कि हम भी उसके इन गुणों का कीर्त्तन करते हुए गन्धर्व बनें गोपति बनें। ऐसा होने पर गाय, बैलों का रक्षक-पालक उसके द्वारा व्यापार करने वाला वैश्य भी गन्धर्व कहलाने लगेगा। गौ का अर्थ पृथिवी मानने पर गोपति अर्थात् पृथिवी का पालक राजा जब सज्जनों की रक्षा व दुष्टों के विनाश में प्रवृत्त होगा तो वह क्षत्रिय भी गन्धर्व बन जायेगा। इसी प्रकार गौ का अर्थ वाणी मानने पर वेदवाणी का पालक धारक उपदेशक जो ब्राह्मण के गुणों को धारण करेगा वह ब्राह्मण गन्धर्व कहा जायेगा और जो विद्वानों की सेवा में तत्पर होकर भाग दौड़ (गति) करेगा (**आशु द्रवतीति शूद्रः**) वह शूद्र होकर भी गन्धर्व कहलाने का अधिकारी बनेगा। समाज का अभिन्न अंग शूद्र बनना कोई निकृष्टता नहीं है पर सरल निश्छल, निष्कपट, असूया, घृणा आदि से रहित होकर सेवा करने वाला ही उत्तम शूद्र होता है। शूद्र होने की भी योग्यता होती है। यह सेवाधर्म तो परमगहन है जो कि सबके वश की बात नहीं है। व्यक्ति भाषण दे सकता है अनुशासन कर सकता है और जीवन की चरम ऊँचाइयों को प्राप्त कर सकता है पर सेवा करना सेवा बुद्धि को अपनाना अत्यन्त कठिन है। **सेवाधर्मः परमगहनः योगिनाम-प्यगम्यः** यह योगियों के लिए भी अगम्य न प्राप्त होने योग्य है। पर जीवन की पूर्णता यथावश्यक यथावसर सभी कुछ बनने और करने में ही है। इस प्रकार एक गन्धर्व शब्द से समाज के सभी वर्गों के लिए इसमें प्रेरणा है। गो शब्द से इन्द्रियों का ग्रहण मानने पर जो कि विषयों की ओर दौड़ती रहती हैं उनको जो धारण करे उनका जो स्वामी बने वह जितेन्द्रिय मनुष्य भी गन्धर्व कहलाने का अधिकारी होगा। यह जितेन्द्रियता सब के लिये आवश्यक है।

तीसरा विशेषण है– **केतपूः**। वह केतपू है। **केतं प्रज्ञां पुनातीति केतपूः**। उसके

ध्यान से नामस्मरण से जप से बुद्धि पवित्र होती है, ज्ञान का प्रकाश होता है। **केतं नः पुनातु** वह हमारी बुद्धि को ज्ञान को पवित्र करे। केतपू के बाद चौथा विशेषण है– **वाचस्पतिः**! वह वाणी का स्वामी है **वाचं नः स्वदतु** हमारी वाणी को मिठास से युक्त कर दे। क्योंकि ज्ञान प्राप्त करने के बाद उस ज्ञान की अभिव्यक्ति महत्त्वपूर्ण है जो कि वाणी से ही संभव है पर कैसी वाणी? जो कि रसपूर्ण रोचक मधुर मिठास से युक्त हो यह मन्त्र में **केतं नः पुनातु** के साथ ही **वाचं नः स्वदतु** इस प्रार्थना से अभिव्यक्त होता है। यजुर्वेद 9/7 में भी यह मन्त्र आया है वहाँ **वाचं के स्थान पर वाजं पाठ है**। वाज का अर्थ अन्न, बल, प्राण आदि होता है। ऐसी स्थिति में वाचस्पति का अर्थ रसाधिपति परमेश्वर होगा जो कि मेरी रसनेन्द्रिय जिह्वा को अन्नादि बल, प्राणदायक पदार्थों के आस्वाद को ग्रहण करने वाला बना दे यह अर्थ होगा, ये प्रार्थनायें सविता देव से की गई हैं।

वैदिक कर्मकाण्ड यज्ञ में इस मन्त्र का विनियोग जल के प्रोक्षण (सिञ्चन) में किया गया है, जबकि मन्त्र में जल की कहीं चर्चा नहीं है फिर जल के साथ जल प्रोक्षण के साथ इस मन्त्र का क्या सम्बन्ध है? यह विचारणीय है। वस्तुतः मन्त्र में सविता देव से जो **यज्ञं प्रसुव** यज्ञ को प्रेरित करने के लिये कहा है वहाँ प्रश्न होता है कि यज्ञ किसको प्रेरित करता है? इस सम्बन्ध में गीता का यह वचन कि– **यज्ञाद् भवति पर्जन्यः** अर्थात् यज्ञ से पर्जन्य (मेघ) बनते हैं अर्थात् वर्षा होती है बहुत सुस्पष्ट है। तात्पर्य हुआ यज्ञ मेघ का वर्षा का प्रेरक है और उस वृष्टि में सविता देव प्रमुख कारण हैं। सूर्य जब छः महीने उत्तरायण काल में ऊपर द्युलोक में जल संग्रह करता है तथा जब भयंकर गर्मी होती है तभी वर्षा होती है। सृष्टि विज्ञान की इसी वर्षाकालिक मानसून निर्माण की प्रक्रिया का बोधन यज्ञ में जब अग्नि तीव्र हो जाती है उस समय इस जलप्रोक्षण के द्वारा जल का वाष्पीकरण करके किया जाता है। इस प्रक्रिया में पूरा योगदान सविता देव अर्थात् सूर्य रूप अग्नि का होता है इसलिये सविता देव के इस मन्त्र का यहाँ विनियोग किया गया है। जो कि यज्ञपति को यज्ञ करने के लिये प्रेरित करता है और यज्ञ को जल बरसाने के लिये। इधर हमारी केतपू प्रज्ञा (बुद्धि) का प्रकाश भी विद्युत् रूप धारण कर वाणी को वाचस्पति मधुर सुस्वादु ज्ञानामृत बरसाने के लिये विवश कर दे यही इस मन्त्र के विनियोग का तात्पर्य है। जिससे सब आनन्दित होकर भगरूप भगवान् के दिव्य अमृत लोक तक पहुँचने के अधिकारी बनें। ●

– आचार्या नन्दिता शास्त्री

सम्पादकीयम्

तमसो मा ज्योतिर्गमय–

आज की व्यस्ततम भागदौड़ भरी जिन्दगी में भी हमारे भारतीय परिवेश में अपनी परम्पराओं मर्यादाओं के प्रति लोगों की आस्था प्रशंसनीय है। रक्षाबन्धन हो, जन्माष्टमी हो, तीज हो, जिउतिया (जीवत्पुत्रिका) हो, पितृपक्ष हो, नवरात्र हो, दशहरा-दीवाली हो सर्वत्र बड़े-बड़े शहरों-महानगरों तक में इनकी धूम है। प्रायः सभी पर्वों-त्योहारों पर व्रत और पकवान दोनों का आनन्द सभी जन लेते हैं। इन सबके पीछे छिपी भावना बहुत महत्त्वपूर्ण और प्रशंसनीय है पर प्रायः इनके साथ बहुत सी विकृतियाँ भी जुड़ जाती हैं जिससे हमारा जनजीवन, हमारा बहुमूल्य समय, हमारी धन-सम्पत्ति का नुकसान अधिक होता है। वर्ष में न जाने कितने ऐसे पर्व हैं जिनमें कभी विश्वकर्मा, कभी गणपति, कभी सरस्वती, कभी दुर्गा आदि विभिन्न देवी-देवताओं का पूजन-अर्चन फिर उनका विसर्जन, उसके साथ ढोल-ढमाका, व्यर्थ के अवसर विहीन फिल्मी गानों पर नाचना कूदना, देर रात तक पी-पीकर उछल-कूद करना, कभी कन्हैया के नाम पर मटकी फोड़ना, कभी रावण को जलाना, कभी पटाखे छोड़ना, कभी रात-रात भर जुआ खेलना आदि कुरीतियाँ कहाँ तक उचित हैं? क्या इससे हमारा पागलपन द्योतित नहीं होता? राष्ट्रीय सम्पत्ति का नुकसान नहीं होता? प्रदूषण नहीं फैलता? यह चिन्ता केवल मेरी नहीं है आज नवरात्र की समाप्ति पर 6 अक्टूबर 2011 का **दैनिक जागरण** समाचार पत्र मेरे सामने है, उसमें प्रकाशित समाचार के अनुसार–

''एक ओर मां गंगा तो दूसरी ओर मां दुर्गा की रासायनिक रंगों से बनी प्रतिमाएँ। विडंबना यह कि विसर्जन के दौरान जब ये रंग गंगा के पानी में घुलेंगे तो स्वाभाविक है कि जल प्रदूषित होगा जिसकी वजह बनेंगे वे क्लब अथवा संस्थाएँ जिन्होंने रासायनिक रंगों से युक्त प्रतिमाएँ स्थापित कीं।

दुर्गोत्सव की समाप्ति पर जब ये प्रतिमाएँ नदियों में विसर्जित की जाएंगी तो उनमें समाहित रसायन न सिर्फ जलीय जीवों और पौधों के लिए खतरनाक साबित होंगे बल्कि मानव के लिए भी नुकसानदेय बनेंगे। जिले में तकरीबन 250 से अधिक प्रतिमाएँ विभिन्न पंडालों में स्थापित हैं। इनमें इने-गिने क्लबों का ही दावा है कि उन्होंने प्राकृतिक रंगों से तैयार प्रतिमाओं की ही स्थापना की है। इस बाबत पर्यावरण विज्ञानी एवं बी.एच.यू के वरिष्ठ **प्रोफेसर बी.डी. त्रिपाठी** का कहना है कि जहरीले रसायनों के प्रभाव से न सिर्फ गुर्दे जैसे महत्त्वपूर्ण अंग खराब होते हैं बल्कि हड्डियाँ भी त्राहि-त्राहि कर उठती हैं।'' पढ़कर आप क्या कहेंगे। यही स्थिति सभी नगरों की है।

यह तो हुआ जल प्रदूषण का कहर इसी के साथ अब दीवाली आ रही है पटाखों का दौर शुरू होगा यानि वायु प्रदूषण-ध्वनि प्रदूषण का कहर और इसी के साथ करोड़ों की सम्पत्ति स्वाहा। क्या पर्व के नाम पर, भगवान्

के नाम पर, मनोरंजन के नाम पर यह सब करते जाना उचित है? एक तरफ हम श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, गीता जयन्ती मनाते हैं, गीता सप्ताह, गीता प्रतियोगिता आयोजित कर गीता पर प्रवचन करते हैं, गीता के श्लोकों को याद करने की प्रेरणा देते हैं। पर उनके संदेशों को नहीं अपनाते। आज पर्यावरण, प्रदूषण जो कि वैश्विक समस्या बन चुकी है उसको दूर करने का जो एक मात्र विज्ञान सिद्ध उपाय है यज्ञ करना हम उसको नहीं अपनाते। जब कि गीता के संदेशों में यज्ञ करने की प्रेरणा प्रमुख रूप से दी गयी है। वहाँ कहा गया है–

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः। (3/9), यज्ञनिमित्तक कर्म से अतिरिक्त जो भी कर्म हैं वे बन्धन के हेतु हैं। **नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम।** जो यज्ञ नहीं करता उसे इहलोक भी प्राप्त नहीं होता परलोक की तो बात ही क्या है। इसी प्रकार जो केवल अपने लिए पकाते खाते हैं वे पाप खाते हैं (3/13)। हमारे लिए अभीष्ट सभी भोग हमें यज्ञ से प्रेरित देवों के माध्यम से प्राप्त होते हैं इसलिए जो व्यक्ति बिना देवताओं को भोग लगाये बिना अग्नि में आहुति दिये खाता है वह मानों चोर होता है (3/12) यही नहीं सभी प्राणी अन्न से अन्न के परिणाम वीर्य से उत्पन्न हैं सब जानते हैं वह अन्न पर्जन्य (मेघ) से उत्पन्न होता है और पर्जन्य यज्ञ से, यज्ञ कर्म से, कर्म वेदों से, वेद परमेश्वर से इस प्रकार परम्परा से **तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्** (3/15) वह सर्वगत नित्य अविनाशी ब्रह्म तो यज्ञ में ही प्रतिष्ठित है। जिसको प्राप्त करने के लिए जिसकी कृपा का पात्र बनने के लिये ये सारे जप-तप, मठ-मन्दिर, धर्म-कर्म, ढोंग-पाखण्ड, तीर्थ-व्रत किये जाते हैं। फिर हम उस यज्ञ को ही क्यों नहीं करते? आज भगवान् श्रीकृष्ण के संदेशों को अपनाना तो दूर उन्हें चोर-जार शिखामणि, गोप-वधूटी-दुकूलचौराय आदि अवाच्य शब्दों का प्रयोग कर बड़े प्रसन्न होते हैं और उनके नाम पर वैसी ही लीलायें रचते, रास रचाते हैं। जब कि 19वीं शताब्दी के महान् समाज सुधारक महर्षि देव दयानन्द ने स्पष्ट रूप से अपने सत्यार्थप्रकाश के 11वें समुल्लास में लिखा है–

देखो! श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई भी अधर्म का आचरण कुछ भी बुरा काम जन्म से मरण पर्यन्त श्री कृष्णजी ने किया हो, ऐसा नहीं लिखा और इस भागवत वाले ने उन पर अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं आदि। वस्तुतः आज आवश्यकता है वेद और वेदानुकूल मन्तव्यों को जीवन में अपनाने की। वेद कहता है–

अशितावत्यतिथावश्नीयाद् यज्ञस्य सात्मत्वाय यज्ञस्याविच्छेदाय तद् व्रतम्॥

(अथर्व.)

अर्थात् प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अतिथि के खा लेने के बाद ही खाये किसलिए? तो यज्ञ की आत्मा को बनाये रखने के लिए, यज्ञ के अविच्छेद सातत्य के लिए नैरन्तर्य के लिये कि जिससे यज्ञ की

निरन्तरता बनी रहे वह कभी विच्छिन्न न हो। वह अतिथि कौन है? अग्नि देव। जिसके लिये मन्त्रों में- **समिधाग्निं दुवस्यत धृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन॥** कहा है। इसलिये प्रतिदिन प्रातः सायं अग्नि में आहुति देकर यज्ञ करके भोजन करना यही व्रत है। जो अतिथि को बिना खिलाये अग्नि में बिना आहुति दिये खाता है, वह पापी होता है। ये सारे धर्म, कर्म व्यर्थ हैं यदि हम भगवान् के नाम पर नाली में दूध-दही बहाते हैं गलियों में फूल-माला सड़ाते, प्रदूषण फैलाते हैं और प्रदूषण को दूर करने का कोई उपाय नहीं करते हैं। भगवान् की बात बिना माने उसके नाम का जयकारा लगाने से कोई उसकी कृपा का पात्र नहीं बन सकता यह सत्य है। दुर्गा-लक्ष्मी-सरस्वती, गणपति, विश्वकर्मा आदि की कृपा हम पर तदनुरूप बनने पर ही होगी। माता-पिता के मरने पर किया गया उनका श्राद्ध-तर्पण कभी फलीभूत नहीं हो सकता यदि हम जीवित माता-पिता का आशीर्वाद नहीं प्राप्त कर सके। माता के दर्शन करने से कुछ नहीं होगा यदि हमने घर की माता को सुख नहीं दिया। इसीलिये **कुर्यादहरहः श्राद्धं** प्रतिदिन श्राद्ध का विधान पितृयज्ञ के रूप में हमारे शास्त्रों में विहित है। इसी के साथ ब्रह्मयज्ञ (संध्योपासना), देवयज्ञ (अग्निहोत्र), अतिथियज्ञ, बलिवैश्वदेव यज्ञ (पशु-पक्षियों के लिए प्रतिदिन ग्रास निकाला) ये पंच महायज्ञ शास्त्रों में नित्य कर्म बताये हैं। **नैत्यके नास्त्यनध्यायः,** नित्य कर्म में कभी अनध्याय (व्यवधान) नहीं होता।

दीपावली और दयानन्द–

दीपमालिका का पर्व निकट है। बात ढोंग, पाखण्ड, अज्ञान के निवारण व सत्य वैदिक सिद्धान्त के पुनः स्थापना की हो ऐसे में 19वीं शताब्दी के क्रान्ति दूत, महान् नायक, राष्ट्रोद्धारक, समाज-सुधारक, देव दयानन्द को कोई कैसे भूल सकता है? जो अकेले ही अपने ब्रह्मचर्य-योगबल, सत्य निष्ठा, ईश्वर विश्वास को आधार बनाकर वेदरूपी शस्त्र को हाथ में लेकर समाज की बहती धारा के विरुद्ध जन जागृति का शंख फूँकने निकल पड़ा था, जिसने वेद की कसौटी पर कसते हुए सभी ऊपर से नीचे तक के संस्कृत के ग्रन्थों, विद्वानों, व उनके वचनों को छाँट दिया था खंगाल लिया था ऐसे अद्वितीय निर्भीक वक्ता शास्त्रार्थसमर विजेता अनेकानेक ग्रन्थों के प्रणेता महर्षि दयानन्द इस युग के ही नहीं सम्पूर्ण इतिहास में अपने ढंग के अकेले महापुरुष थे।

वेद के इन सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने न केवल प्रवचन दिये, पुस्तकें लिखीं, शास्त्रार्थ किये बल्कि अपने जीवन को भी आहुत कर दिया। आज महर्षि न होते तो वेद की विदुषियों को तैयार करने वाला यह गुरुकुल भी न होता। हमारी आचार्या जी भी न होतीं, न हम होते, न हमारी यह लेखनी होती। उस ऋषि का हम पर महान् उपकार है। आज के दिन हम आर्यों को समाज से ढोंग, अंधविश्वास, पाखण्ड को दूर करने का व्रत लेना चाहिए। तभी हम इस पर्व के– **असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय** इस उद्देश्य को फलीभूत कर सकेंगे।

● **आचार्या नन्दिता शास्त्री**

इतिवृत्तम्

– डॉ० प्रीति विमर्शिनी

जलते कितने दीप बुझ गये, चलते सूरज चाँद रुक गये।
तुमने दिया जलाया ऐसा, आँधी जिसको शीश नवाये॥
तुमने चरण बढ़ाया ऐसा, मंजिल जिसको शीश नवाये।

त्याग, तपस्या की प्रतिमूर्ति, ऊर्जा की स्रोत दया, करुणा की सागर, वैदिक ज्ञान की भण्डार, सिद्धान्तनिष्ठ, कर्मनिष्ठ, वेदपथानुगामिनी, ऋषिभक्त, आर्य जगत् की प्रख्यात विदुषी, पाणिनि कन्या महाविद्यालय की संस्थापिका, आर्ष शिक्षा प्रणाली की अनन्य पोषिका, यथानाम तथा गुणाः **आचार्या मेधा देवी जी** जिनका सम्पूर्ण जीवन ही आर्ष पाठविधि के संरक्षण संवर्धन हेतु समर्पित था आज उनकी प्रथम पुण्यतिथि 29 अगस्त को हम सबने समर्पण दिवस के रूप में मनाया तथा सभी कन्याओं ने वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार में आर्षशिक्षा प्रणाली के संवर्धन में तत्पर रहते हुए अपने जीवन को समर्पित करने का संकल्प लेकर अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

यहाँ अध्ययनरत लघु ब्रह्मचारिणियों में भी ये बात प्रस्फुटित हों, वे वैदिक ज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिये संकल्पित हों अपनी आचार्या गुरु माँ के पदचिह्नों की अनुगामिनी बनें उनके महान् उद्देश्यों एवं कार्यों को पूर्ण करने के लिये उसी परम्परा में लगे पुष्पों की लड़ी में अन्य कलियाँ भी खिल कर पुष्पित एवं पल्लवित हों ऐसा विचार करके कन्याओं के उपनयन एवं वेदारम्भ संस्कार के लिये आज का ही महत्त्वपूर्ण दिवस चयनित किया गया तथा भारत के विभिन्न जम्मू, कश्मीर, हिमांचल, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, नेपाल, हैदराबाद आदि प्रान्तों व नगरों से आई हुई 25 कन्याओं का उपनयन (यज्ञोपवीत) एवं 10 कन्याओं का वेदारम्भ संस्कार पाणिनि कन्या महाविद्यालय की वर्त्तमान आचार्या **विदुषी नन्दिता शास्त्री** जी के आचार्यत्व में, पूर्ण गरिमा, गुरुता एवं गम्भीरता के साथ सम्पन्न हुआ उपनयन संस्कार की प्रत्येक क्रियाओं का महत्त्व बताते हुए आपने कन्याओं को व्रतनिष्ठ बनने का संकल्प कराया ब्रह्मचर्य की दीक्षा व गायत्री मन्त्र का उपदेश दिया। लघु ब्रह्मचारिणियों ने– संस्कार के अनन्तर गुरुकुलीय परम्परा का निर्वाह करते हुए पूर्ण सच्चरित्र, वेद-विदुषी, सुयोग्य स्नातिका बनकर आचार्या जी के सपनों को साकार करने का संकल्प लिया। हाथों में दण्ड, कमर में मेखला तथा कन्धे पर भिक्षा की पोटली लिये हुए पीतवस्त्रधारिणी इन ब्रह्मचारिणियों के मुखमण्डल पर संकल्प की आभा देखते ही बनती थी मानों सब कह रही हों–

माँ! तेरे तप का हममें बल है,
जीवन का आवेग प्रबल है।
तेरे आदर्शों आदेशों को गुरु माँ,
हम जीवन में अपनायेंगे,
हम आगे बढ़ते जायेंगे॥

त्रिदिवसीय वैदिक सम्मेलन एवं विद्वद्गोष्ठी

बाल्यकाल से ही मैं कहीं भी बाहर विद्वद्गोष्ठी या वैदिक सम्मेलन में जाती थी तो मुझे बहुत अच्छा लगता था। ज्ञान संवर्धन होता था और अच्छी-2 प्रेरणायें भी मिलती थीं जो भी कुछ सुनती थी वहाँ से आकर कक्षा में सबको बताती थी ताकि अन्यों की भी रूचि बने, ज्ञान बढ़े तथा कुछ प्रेरणायें मिलें। इतना ही नहीं पू. आचार्या जी से कई बार कहती थी कि अपने विद्यालय में भी इस प्रकार की गोष्ठी वेद सम्मेलन करवाना चाहिये ताकि सभी लाभान्वित हो सकें। बहिन जी कहतीं- हाँ बच्ची! बात तो तेरी सही है मेरी भी हार्दिक इच्छा रहती है पर यह बहुत व्यय साध्य है चिन्ता मत कर पाणिनि मन्दिर बन जाने दे उसके बाद करेंगे। पर आचार्या जी के सामने तक न पाणिनि मन्दिर बना और न ही इस प्रकार की विद्वद्गोष्ठी हो पाई। परन्तु भगवान् ने हमारी कामना पूर्ण करने का मार्ग बना दिया।

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान के सचिव **प्रो. रूपकिशोर जी शास्त्री** ने जो कि बड़े ही सरल सुचिन्तक विद्वान् हैं, आपके ही सौजन्य से पौराणिक बहुल काशी नगरी में वैदिक सम्मेलन एवं विद्वद्गोष्ठी का समायोजन हो सका। यह आपकी ही नवीन सोच थी कि जो पारम्परिक विद्वान् ब्राह्मण प्रकृति-विकृति पाठ सहित वेद मन्त्रों को स्मरण करते हैं उन वैदिकों का वेद संरक्षण में महत्त्वपूर्ण योगदान तो है ही अतः उनका सम्मान एवं प्रचार-प्रसार तो होना ही चाहिये परन्तु उसके साथ-साथ ही वेदों में निहित तत्त्वार्थ को, विविध ज्ञान-विज्ञान को भी समाज के सामने लाना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि वेद मन्त्रों के अर्थ ही तो उसके फल पुष्प हैं ''**अर्थं वाचः पुष्पफलमाह**'' जो वैदिक विद्वान् इस महनीय कार्य में लगे हैं तथा नित नये-2 अनुसन्धान कर रहे हैं उनका भी वेद संरक्षण में महत्त्वपूर्ण योगदान है अतः उनके ज्ञान से भी जनसमाज तथा पारम्परिक विद्वान् लाभान्वित हों इसी दृष्टि से जब से आप इस संस्थान के सचिव बने आपने यथावसर वैदिक सम्मेलन एवं विद्वद्गोष्ठी दोनों का एक साथ समायोजन अधिकाधिक करवाना प्रारम्भ किया वस्तुतः यह कार्य कोई गुरुकुलीय वैदिक विद्वान् ही करा सकता था।

इसी क्रम में आपने अपने प्रिय पाणिनि कन्या महाविद्यालय को भी चुना और आचार्या नन्दिता शास्त्री जी से वार्त्ता की। वे स्वयं भी कई वर्षों से इस प्रकार का आयोजन विद्यालय में करवाना चाह रही थीं पर सफलता नहीं मिली थी आपके प्रस्ताव रखते ही उन्होंने इस कार्यक्रम को सहर्ष स्वीकार किया। मात्र एक मास की अल्पावधि में विद्वानों को सूचित करना, उनसे स्वीकृति लेना, आवास, भोजनादि की व्यवस्था से लेकर कन्याओं के सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि की सभी तैयारियाँ पूर्ण तत्परता के साथ प्रारम्भ हुईं।

और वह दिन भी आ गया जब 29 जुलाई से ही दूर-दूर से वैदिक विद्वानों का आगमन प्रारम्भ हुआ– उज्जैन से मा. सचिव डा. रूपकिशोर जी शास्त्री, डा.चन्द्रकान्त द्विवेदी, कर्नाटक से पं. श्रीधर शशांक, अडि जी, दिल्ली से प्रो. ओम्प्रकाश पाण्डेय, हरिद्वार से डॉ. महावीर अग्रवाल, गाजियाबाद से डॉ. गणेशदत्त

शर्मा, लखनऊ से डॉ. ओम्प्रकाश पाण्डेय, इलाहाबाद से डॉ. आनन्द श्रीवास्तव, डॉ. सोमदेव शतांशु हरिद्वार, डॉ. नवलता-रेखा शुक्ला लखनऊ, डॉ. प्रतिभा पुरन्धि जम्मू, डॉ. नरेश बत्रा अम्बाला, आचार्या डॉ. प्रियंवदा वेदभारती नजीबाबाद, डॉ. प्रशस्यमित्र शास्त्री राय बरेली, डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री अमेठी साथ ही गोरखपुर, वाराणसी आदि के भी अनेक वैदिक विद्वानों ने अपनी गौरवपूर्ण उपस्थिति से सम्मेलन को गौरवान्वित किया।

सात सत्रों में निष्पन्न होने वाले इस **त्रिदिवसीय वैदिक सम्मेलन का शुभारम्भ** 30 जुलाई 9.30 बजे गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के उपकुलपति **डॉ. महावीर अग्रवाल** व महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान के सचिव **प्रो. रूपकिशोर शास्त्री जी** के संयुक्त करकमलों से ध्वजोत्तोलन के साथ हुआ। उद्घाटन सत्र में मुख्यातिथि पद से बोलते हुए **डॉ. महावीर अग्रवाल जी** ने वेद की महत्ता को बताते हुए कहा कि वेद ही सभी आदर्शों की मूल गंगोत्री है। देश का ताप और संताप मिटाने का सामर्थ्य किसी के पास है तो वह भारत के वैदिक विद्वानों के पास ही है। अतः वैदिक चिन्तन धारा का अवलम्बन देश की सरकार को अवश्य करना चाहिये।

वेद विद्या प्रतिष्ठान के सचिव **डॉ. रूपकिशोर जी शास्त्री** ने विशिष्ट अतिथि पद से सभी को सम्बोधित करते हुए कहा कि देश की कन्याओं को वेद वेदाङ्ग की शिक्षा अत्यन्त अनिवार्य रूप से देनी चाहिये क्योंकि **कन्यायें जिस परिवार में जायेंगी उस परिवार के सम्पूर्ण परिवेश को वेदमय बनाने का सामर्थ्य रखते हुए कई कुलों को गौरवान्वित करेंगी। इस सपने को पूरा करने में पाणिनि कन्या महाविद्यालय का विश्व में पहला स्थान है जो देश की गौरव स्थली है। यहाँ की बेटियाँ पूरे समाज की बेटियाँ हें, यही हमारी भावी पीढ़ी की मर्यादा और शान हैं**, साथ ही उन्होंने पारम्परिक वैदिक विद्वानों का भी सम्मान करते हुए कहा कि आज यदि वेद हमें शुद्धरूप में उपलब्ध हो रहे हैं तो इनकी बदौलत। यदि इन ब्राह्मणों ने वेदों को कण्ठस्थ करके श्रुति परम्परा को अक्षुण्ण न रखा होता तो वेदों का लुप्त होना अनिवार्य था। ये ब्राह्मण विकृति पाठों के द्वारा मूल प्रकृति को सुरक्षित रखते हैं। वेद सांस्कृतिक धरोहर है अतः इसके प्रचार-प्रसार में सबको सहयोग करना चाहिये।

अध्यक्षीय पद से अन्नपूर्णा मठ वाराणसी के पूज्य महन्त **श्री रामेश्वर पुरी जी** ने कहा कि संस्कृत केवल प्रवचन की भाषा नहीं अपितु इसे रोजगार परक भी बनाना चाहिये बड़े-बड़े सेमिनारों में केवल संस्कृत की घोषणा कर देने से संस्कृत का उद्धार नहीं किया जा सकता है इसके लिये प्रयोगात्मक और शोधात्मक कार्य होने चाहियें। इस सत्र का संयोजन डॉ. आनन्द कुमार श्रीवास्तव (इलाहाबाद) तथा धन्यवाद ज्ञापन विद्यालय के सम्मानित सदस्य डॉ. ब्रह्मानन्द चतुर्वेदी (पटना) ने किया। उद्घाटन सत्र के अनन्तर विद्वद्गोष्ठी के प्रथम सत्र में **वेदार्थनिरूपणे ज्योतिषस्य उपादेयता** इस विषय को केन्द्रित कर **गणेश दत्त शर्मा जी की अध्यक्षता** में गोष्ठी प्रारम्भ हुई जिसमें **सूर्या देवी चतुर्वेदा**, **डॉ. प्रतिभा पुरन्धि**, **श्री विनय झा जी दरभंगा (बिहार)** आदि विद्वानों एवं विदुषियों ने अपने सारगर्भित मौलिक विचार उपस्थित किये।

विद्वद्गोष्ठी के द्वितीय सत्र का विषय था– **वेदार्थनिरूपणे व्याकरणस्य अनिवार्यता** डा. प्रियवंदा वेदभारती जी के संयोजकत्व व प्रो. महावीर जी अग्रवाल के अध्यक्षता में सम्पन्न इस गोष्ठी के मुख्य अतिथि थे– प्रो. ओम्प्रकाश पाण्डेय, नई दिल्ली। श्रीमती वीणा अग्रवाल, डॉ. नरेश बत्रा, चि. यशस्वी, डॉ. कृष्णकान्त जी, डॉ. गणेश दत्त शर्मा, प्रो. ओम्प्रकाश पाण्डेय आदि विद्वानों ने इस सत्र में अपना वैदुष्य पूर्ण शोध परक चिन्तन प्रस्तुत किया। विद्वत् सम्मेलन के अन्तर्गत तृतीय तथा अन्तिम सम्मेलन का विषय था **वेदार्थनिरूपणे कल्पस्य उपादेयता।** यह गोष्ठी प्रो. ओम्प्रकाश पाण्डेय लखनऊ की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। **डॉ. सोमदेव शतांशु जी** इस सत्र के संयोजक थे आज की गोष्ठी डॉ. प्रियंवदा वेदभारती, डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री, डॉ. प्रशस्यमित्र जी शास्त्री, डॉ. नवलता जी आदि के गवेषणा परक गूढ वक्तव्यों के साथ सम्पन्न हुई।

विद्वत् सम्मेलन में सभी विषयों पर आधारित निखिल विद्वज्जनों की विषय स्थापना अत्यन्त ही वैदुष्य पूर्ण मौलिक चिन्तन से युक्त गम्भीर एवं ज्ञानवर्धक रही जिसका विद्यालयीय प्रबुद्ध ज्येष्ठ छात्राओं तथा समुपस्थित प्रबुद्ध जनता ने यथोचित लाभ उठाया। ये सभी वक्तव्य यथावसर सभी के लाभार्थ अपनी पाणिनि-प्रभा पत्रिका में प्रकाशित भी होते रहेंगे।

वैदिक सम्मेलन में जितने ज्ञानवर्धक वैदिक विद्वानों के प्रवचन रहे उतने ही आकर्षण के केन्द्र सबकी हृत्तन्त्रियों को झंकृत कर देने वाला प्रत्येक सत्र के प्रारम्भ में वैदिक विद्वानों द्वारा प्रस्तुत विविध शाखाओं के सस्वर प्रकृति-विकृति पाठ तथा सामवेद की विविध पद्धतियों का गायन रहा। साथ ही लोगों के शिक्षाप्रद मनोरंजन के लिये प्रथम दिन रात्रिकालीन सत्र में विद्यालयीय ब्रह्मचारिणियों द्वारा शौर्य प्रदर्शन एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम का भी आयोजन किया गया था। जिसमें गोष्ठी के विषयों से सम्बन्धित **सत्यार्थ दर्शन** नाटिका रोचक एवं ज्ञानवर्धक रही। जिसके अध्यक्ष पद को सुशोभित कर रहे थे दिल्ली से पधारे हुए माननीय भ्राता **श्री अजय सहगल जी** (टंकारा वाले)। आपने सभी कार्यक्रमों का सूक्ष्म अवलोकन कर आश्चर्य व्यक्त किया कि इतने सीमित साधन में इतना सुन्दर शिक्षाप्रद मनोरंजनात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत करना आचार्या नन्दिता शास्त्री जी के ही वश की बात हो सकती है सचमुच वे बधाई की पात्र हैं। इस नाटिका में कुछ कन्यायें तो विशेष पुरस्कार के योग्य हैं। मैं पहली बार यहाँ आया मुझे बहुत ही अच्छा लगा।

इसी क्रम में द्वितीय दिवस की निशा कर्णाटक, जम्मू-कश्मीर, दिल्ली से लेकर वाराणसी तक से पधारे हुए सुप्रसिद्ध कवियों की विविध छन्द अलङ्कार रस से युक्त काव्यात्मक प्रतिभा का दिग्दर्शक संस्कृत कवि सम्मेलन आयोजित हुआ। जो कि **डॉ. प्रशस्यमित्र जी** की अध्यक्षता एवं **डॉ. धर्मशील चतुर्वेदी जी** के संयोजकत्व में सम्पूर्ण सभागार को आमोद-प्रमोद से परिपूर्ण कर रहा था। इस कवि सम्मेलन में भाग लेने वाले स्वनाम धन्य कवि थे डॉ. नरेश बत्रा अम्बाला, आशु कवि श्रीधर अडि जी कर्नाटक, डॉ. प्रतिभा पुरन्धि जम्मू, डॉ. नवलता जी लखनऊ, श्री जनार्दनमणि जी इलाहाबाद, प्रो. ओम्प्रकाश पाण्डेय लखनऊ, डॉ. राजाराम शुक्ल वाराणसी, कु. प्रियङ्का शास्त्री पाणिनि कन्या महाविद्यालय आदि इन सभी

कविवरों ने जहाँ विद्वद्गोष्ठी में अपने वैदुष्यपूर्ण गम्भीर विचार व्यक्त किये वहीं इस कवि सम्मेलन में विविध प्रकार के राष्ट्रीय सामाजिक परिवेश का दिग्दर्शन भी मनोरंजनात्मक शैली में कराया।

1 अगस्त को **वैदिक सम्मेलन के समापन सत्र में** विशिष्ट अतिथि डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री अमेठी, अध्यक्ष डॉ. महावीर अग्रवाल जी हरिद्वार, संयोजिका विद्यालय की पूर्व स्नातिका डॉ. प्रतिभा पुरन्धि जम्मू थीं। विद्यालयीय ब्रह्मचारिणियों के वेदपाठ, गायन, कविता अन्त्याक्षरी, भाषण इत्यादि संक्षिप्त कार्यक्रमों के अनन्तर सभी विशिष्ट महानुभावों ने अपने उद्बोधन में विद्यालय की त्यागमयी विदुषी संस्थापिकाओं आचार्याद्वय का पुण्य स्मरण करते हुए उनके द्वारा लगाये हुए पौधे को **आ. नन्दिता शास्त्री जी** के संरक्षण में वृक्ष रूप में पल्लवित पुष्पित होते हुए देखकर पूर्ण सन्तोष व्यक्त किया। त्रिदिवसीय सम्मेलन के गरिमापूर्ण सफल समायोजन की भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा अपना आशीर्वाद प्रदान किया।

डा. ज्वलन्त कुमार शास्त्री ने अपने उद्बोधन में कहा कि यह विद्यालय आज पुष्पित एवं पल्लवित है तो इसका पूरा श्रेय उनको जाता है, जिन्होंने अपने तपोबल से इस उद्यान को सींचा है वे स्वनाम धन्य **डॉ. प्रज्ञा देवी** एवं आचार्या **पूजनीया मेधा देवी जी** हैं। अध्यक्ष महोदय ने भी अपने उद्बोधन से श्रोतृवृन्द का उत्साहवर्धन किया एवं विद्यालय को देखकर अपने अनुभव को व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि– कादम्बरी में जाबालि महर्षि के आश्रम का वर्णन कवि ने किया कहा है कि **धन्या इयं आश्रमभूमिः यस्याः सोऽयमधिपतिः**। अर्थात् यह आश्रम भूमि धन्य है जिसके अधिपति जाबाल ऋषि हैं। इसी प्रकार यह पाणिनि आश्रम धन्य है जिस कुलभूमि की अधिष्ठात्री देवियाँ **डॉ. प्रज्ञा देवी** एवं **मेधा देवी जी** हैं। जो इस आश्रम को सूर्य एवं चन्द्र की भाँति ज्ञान, तप एवं कर्म से निरन्तर आगे बढ़ते रहने को प्रेरित करती रहीं उनका आशीर्वाद तो सब बेटियों को आप्यायित करेगा ही। इस विद्वत्सम्मेलन में विद्यालय के सम्मानित सदस्य डॉ. नन्दनम् सत्यम् जी (स्वतन्त्रता सेनानी, हैदराबाद) श्री देव भट्टाचार्य जी रामनगर वाराणसी तथा आर्य सेनानी श्री वाचोनिधि जी आर्य गाँधीधाम उपस्थित थे। समापन सत्र के अन्त में दूर-दूर से पधारे हुए वैदिक ब्राह्मणों एवं विद्वानों का सम्मान अङ्गवस्त्रम् माल्यार्पण आदि प्रदान कर सम्मेलन में पधारे हुए विशिष्ट बन्धुओं द्वारा किया गया। शान्ति गीत एवं शान्तिपाठ के अनन्तर इस बृहत् आयोजन का समापन हो गया।

पूज्या आचार्या जी के अभाव में यह पहला बृहद् आयोजन था जो **आचार्या नन्दिता शास्त्री जी** के कुशल नेतृत्व में पूर्ण गरिमा एवं भव्यता के साथ सम्पन्न हुआ ऐसा प्रतीत हुआ मानों इन्होंने दोनों आचार्याओं का कार्यक्रम के प्रारम्भ में ही अपने अन्दर आवाहन कर लिया हो, और पुनः उसी ऊर्जा से ऊर्जित हो सभी आयोजनगत व्यवस्थाओं पर अपनी दृष्टि रखते हुए इन्होंने सभी कार्यक्रमों के प्रारम्भ एवं अन्त में सभी विषयों पर थोड़े ही समय में वैदुष्यपूर्ण सारगर्भित वैदिक चिन्तन प्रस्तुत कर गोष्ठियों का समापन करती रहीं। सच! पू. बड़ी आचार्या जी उस समय इनमें जीवन्त होती हुई प्रतीत हो रही थीं। परमपिता परमेश्वर आपको सुस्वास्थ्य एवं दीर्घ आयुष्य

प्रदान करे यही हमारी कामना है।

सम्पूर्ण कार्यक्रम का एक उल्लेख्य बिन्दु यह भी रहा कि इस विद्वद्गोष्ठी में विद्यालय की विदुषी स्नातिकाओं तथा एक-दो विद्वानों को छोड़कर सभी विद्वान् मुख्य अतिथि एवं अध्यक्ष आदि, वैदिक विद्वानों ने इस विद्यालय के प्रथम बार दर्शन किये थे। बाहर-बाहर से विद्यालय की चर्चायें सब ने सुनी थीं, पूज्या आचार्या जी से मिले थे, विद्यालयीय कन्याओं की प्रतिभा का दर्शन किया था पर इस पुण्यभूमि में उनका शुभ पदार्पण प्रथम बार ही हुआ था। इन सभी अभ्यागत विद्वान् महानुभावों ने विद्यालय की, यहाँ के अध्ययन अध्यापन की, त्याग-तपस्या की, सुरुचिपूर्ण व्यवस्था की, पू. आचार्या जी के अभाव में भी **आचार्या नन्दिता शास्त्री जी** के आचार्यत्व में गतिमान् विद्यालय को देखकर मुक्तकण्ठ से भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा सभी को अपना आशीर्वाद प्रदान किया। उदाहरण स्वरूप यहाँ कतिपय विद्वानों की लेखनी से निःसृत कुछ पङ्क्तियाँ उद्घृत कर रही हूँ।

प्रो. महावीर अग्रवाल– पाणिनि कन्या महाविद्यालये वैदिक सम्मेलने समागत्य अनिवर्चनीयं हर्षप्रकर्षभनुमवामि अत्रत्यं स्नेहपूर्ण-मंगलमयं सात्विकं वातावरणं दर्शं-दर्शं मोमुदीति मे चेतः। अत्रत्याः ब्रह्मवादिन्यः ब्रह्मचारिण्यः आचार्याश्च वन्दनीयाः अभिनन्दनीयाश्च वर्तन्ते।

प्रो. रमेशचन्द्र दास शर्मा– पाणिनि कन्या महाविद्यालय के प्रांगण में अनुष्ठित क्षेत्रिय वैदिक सम्मेलन से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। इससे समाज को एक अच्छा सन्देश जायेगा और इस परम्परा को आगे बढ़ाने की प्रेरणा मिलेगी। अतः मैं उज्जैन के सचिव प्रो. रूपकिशोर शास्त्री जी को हृदय से धन्यवाद देता हूँ तथा आयोजिका प्राचार्या डा. नन्दिता शास्त्री एवं उनके सहयोगियों को भी धन्यवाद देता हूँ।

डा. गणेश दत्त शर्मा– वेद सम्मेलन में उपस्थित होकर अद्वितीय आनन्द का अनुभव हुआ। यहाँ पाणिनि कन्या महाविद्यालय में वेदमय-संस्कृतमय वातावरण देखकर हृदय गद्गद हो गया। यह महाविद्यालय उत्तरोत्तर उन्नति करे। वेद की ज्योति को लेकर निरन्तर सभी क्षेत्रों में आगे बढ़ता रहे। इस आशा के साथ....।

डा. कृष्णकान्त वैदिक– पाणिनि कन्या महाविद्यालय वाराणसी में आयोजित वैदिक सम्मेलन व गोष्ठी पूर्णतः सफल रही। इसके लिए बहिन नन्दिता जी व उनकी समस्त सहयोगिनी आचार्यायें व छात्रायें बधाई की पात्र हैं। मैं पाणिनि कन्या महाविद्यालय की दिनोंदिन उन्नति की कामना करता हूँ।

प्रचार-यात्रायें–

विद्यालयीय सभी गतिविधियों को सम्पन्न करते हुए साथ में प्रचार-यात्रा के कार्यक्रम भी सम्पन्न हुए। जिसमें 4 से 6 अगस्त तक आर्य स्त्री समाज मेरठ, 15 अगस्त से 22 अगस्त तक आर्य समाज हनुमान् रोड नई दिल्ली तथा14 सितम्बर से 21 सितम्बर तक आर्य स्त्री समाज अशोक विहार दिल्ली, प्रमुख रहे।

इसके अतिरिक्त प्रतिदिन स्थानीय प्रबुद्ध नागरिक जन अपने विद्यालय के द्वारा ही भूमिपूजन, गृहप्रवेश, उद्घाटन, पारिवारिक शान्ति यज्ञादि शुभ कृत्य सम्पन्न कराकर आत्मिक शान्ति एवं आनन्द की अनुभूति तो करते ही रहते हैं। वस्तुतः पौराणिक बहुल काशी...

(शेष पृष्ठ 31 पर)

आपके पत्र

[अपने गुरुकुल की कुलमाता आचार्या पं. मेधा देवी जी के महाप्रयाण के बाद सभी आर्य भाई-बहिन गुरुकुल के प्रति अपनी गहरी हार्दिक संवेदना, आत्मीयता व लगाव को प्रायःदूरभाष व किञ्चित् पत्रादि के माध्यम से व्यक्त करते रहे हैं, मैं उन सब की आभारी हूँ। आप सब की अपेक्षाओं व अपने गुरुजनों के निर्दिष्ट पथ पर मैं खरी उतर सकूँ यही प्रभु से व आप सब से आशीर्वाद चाहती हूँ। कुछ पत्र सम्मानार्थ प्रकाशित कर रही हूँ इससे हमारा उत्साहवर्धन होता है। –सम्पा0]

आदरणीया बहिन जी, सादर अभिवादन।

वेद-सम्मेलन के अवसर पर आपकी आत्मीयता, अध्यवसाय और सुनियोजित आयोजन क्षमता का परिचय पाकर आप्यायित अनुभव कर रहा हूँ। कल्प-सत्र के अध्यक्षीय उद्‌बोधन के सन्दर्भ में आपने जो मेरी प्ररोचना की, वह छोटी बहिन की अपने अग्रज के प्रति आत्यन्तिक सदाशयता का ही द्योतक है। मैं कभी आपके महाविद्यालय में आने का समय नहीं निकाल सका, हाँ, सुद्युम्नाचार्य जी से इसकी चर्चा सुनी अवश्य थी, लेकिन इस बार इसमें कन्याओं के अत्यन्त उत्कृष्ट शिक्षण-प्रशिक्षण की व्यवस्था और विधान को देखकर हृदय से उत्कट प्रशंसा की भावना ही जगी।

– **प्रो. ओम्प्रकाश पाण्डेय**, लखनऊ

माननीया नन्दिता जी,

आप द्वारा भेजे हुए 'रक्षा सूत्र' प्रति वर्ष कर्त्तव्य का बोध कराते हैं, धन्यवाद।

आश्रम के प्रति आपकी लगन सराहनीय है, आप हमेशा उन्नति के पथ पर अग्रसर रहें, ऐसी प्रभु से कामना करता हूँ।

– **योगेश मुंजाल**, नई दिल्ली

आचार्या सुश्री नन्दिता चतुर्वेदी जी, सादर नमस्ते

आपने विद्यालय की प्रगति को बनाये रखा है। बहुत सराहनीय है। कृपया प्रत्येक मास पत्रिका हमारे पते पर भेज दिया करें। धन्यवाद।

– **शरणानन्द सरस्वती**, मुरादाबाद

समादरणीय आचार्या नन्दिता शास्त्री जी, सादर नमस्ते।

ईश्वर कृपा से आप सकुशल गुरुकुल के संचालन प्रबन्धन कार्य में संलग्न होंगी। स्व. श्रद्धेया आचार्या मेधा देवी जी के निधन से राष्ट्र-समाज की महती क्षति हुई है, उनके अभाव में आप पर दायित्व वहन का भार अधिक हो गया है। संसार में काल के प्रवाह चक्र में वर्तमान अतीत को प्राप्त होता रहा व रहेगा।

इस परिवर्तनशील संसार में अपरिवर्तनशील परमात्मा का सान्निध्य ही जीवात्मा के लिए कृतकृत्यता को देने वाला है, यह स्थिर सिद्धान्त जीवन में स्थैर्य प्रदान करता है। जो कुछ संसार में होने योग्य है, उसके होने में आश्चर्य व भय-शोक उचित नहीं।

परमात्मा आपको इतनी शक्ति प्रदान करें, कि आप आवश्यक दायित्वों को वहन करते हुये जीवन के अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त कर सकें। शेष कुशल।

– **स्वामी आशुतोष**, पंचकूला (हरियाणा)

आदरणीय बहिन जी, सप्रेम नमस्ते।

आपको भेजी पत्रिका के साथ रक्षा सूत्र प्राप्त हुआ धन्यवाद।

संस्था की उन्नति जानकर अत्यन्त प्रसन्नता होती है और ईश्वर से यही मनाया करती हूँ कि उत्तरोत्तर विकास हो। – **रूपरानी त्रिवेदी** (उन्नाव)

वेद और विज्ञान

– पं. सूर्यबली पाण्डेय

वेद का अर्थ ही है ज्ञान। अतः ज्ञान में विज्ञान न हो, यह कैसे कहा जा सकता है? अतः वेद के अन्दर सभी प्रकार का ज्ञान बीज रूप में विद्यमान है इसी कारण महात्मा मनु ने "**सर्वज्ञानमयो हि सः**" का उद्घोष किया है। जब वेद सर्व ज्ञान युक्त है तब वह विज्ञान से रिक्त कैसे कहा जा सकता है? परन्तु आज के नव शिक्षित जन जब यह सुनते हैं कि किसी विद्वान् के द्वारा वेद सर्वविद्यानिधान प्रतिपादित किया जा रहा है तब वे सहसा कह उठते हैं कि यह वेद को अद्यतन सिद्ध करने का प्रयास है। अन्यथा वेद का विज्ञान से तो दूर का भी सम्बन्ध नहीं हो सकता। कहाँ अति प्राचीन आरम्भिक ज्ञान के समय का वेद और कहाँ अद्यतन विकसित ज्ञान की राशि विज्ञान! दोनों दो विपरीत दिशा की वस्तुएँ हैं। ऐसे मनीषियों का कथन है कि वेद उस समय की कृतियाँ हैं जब मनुष्य के मस्तिष्क का विकास नहीं हुआ था और विज्ञान तीन चार शताब्दियों के अन्दर पाश्चात्य उर्वर मस्तिष्कों के सतत प्रयास का परिणाम है। वेद पूर्वी ज्ञान की आरम्भिक स्थिति है और विज्ञान पश्चिमी ज्ञान की उत्कृष्टावस्था है। अतः वेद और विज्ञान में कोई सामंजस्य नहीं बैठ सकता। विवाद के इसी परिप्रेक्ष्य में बैठकर हमें देखना है कि वेद की वास्तविक स्थिति क्या है?

हम वैदिकधर्मियों की मान्यता है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है। परम कृपालु प्रभु ने सृष्टि के आदि में मानवीय उपयोग के लिए जितना ज्ञान आवश्यक समझा अपनी अनन्त ज्ञान राशि में से उतना ज्ञान प्रदान किया, वही वेद कहलाया। विज्ञान भी मानव उपयोग के लिए ही है, तब प्रभु ने अपने अनुदानित ज्ञान राशि में उसकी न्यूनता क्यों की होगी? अतः प्रभु प्रदत्त ज्ञान विज्ञान विहीन होगा, ऐसी कल्पना भी नहीं की जा सकती। ऐसी कल्पना तो प्रभु को अल्पज्ञ बना देगी। परन्तु वह सर्वज्ञ है। इसकी दो दिशायें होती हैं। एक वह जिसके द्वारा स्रष्टा का सम्यक् बोध होता है और दूसरी वह जिसके द्वारा सृष्टि का परिज्ञान होता है।

पारिभाषिक रूप में प्रथम को आध्यात्मिक और द्वितीय को भौतिक विज्ञान कहते हैं। कहना न होगा कि वेद में उक्त दोनों प्रकार के विज्ञान प्रभूत मात्रा में विद्यमान हैं, पर आज का वैज्ञानिक आध्यात्मिकता से तो कोसों दूर भागता है। विज्ञान से उसका अभिप्राय मात्र भौतिक विज्ञान से है। अतः देखना है कि क्या सचमुच वेद भौतिक विज्ञान से शून्य है? हमारी मान्यता में सभी प्रकार की दिशायें वेद से ही प्रादुर्भूत हुई हैं। भौतिक विज्ञान भी एक विद्या है। अतः उसका भी मूल स्रोत वेद में ही विद्यमान होना चाहिये। यदि वेद में भौतिक विज्ञान न होता तो अन्यत्र कहीं से भी उसका दर्शन सम्भव न था। प्रमाण के लिये भौतिक विज्ञान के कतिपय तथ्यों पर विचार करना आवश्यक है।

कहा जाता है कि अपने समय के **वैज्ञानिक गैलेलियो** ने अपने शोध के आधार पर यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि पृथ्वी गोल है और यह सूर्य के चतुर्दिक् परिभ्रमण करती है। तात्कालिक धर्मान्धों ने उनके प्रति विद्रोह किया और उस बेचारे को उनकी न्याय व्यवस्था के कारण अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। किन्तु आज का वैज्ञानिक अपने धर्मान्ध पूर्वजों के कुकृत्य पर पश्चात्ताप करता हुआ उसके ही शोध को सर्वांश में स्वीकार करता है और मानता है कि पृथ्वी गोल है और वह सूर्य के चारों ओर घूमती भी है। परन्तु गैलेलियो का उक्त शोध क्या कोई नवीन तथ्य था? **आविष्कार का अर्थ ही है आविष्कारक का अपनी अज्ञानता की स्वीकृति। तथ्य पूर्व से विद्यमान होता है। आविष्कारक ने मात्र उसे जान लिया और जो नहीं जानते थे उन तक उसे पहुँचा दिया।** गैलेलियो की भी यही स्थिति थी। आयें देखें वेद इस सम्बन्ध में क्या कहता है? यजुर्वेद के अध्याय तीन का छठा मंत्र है–

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्,
मातरं पुरः पितरं च प्रयन्त्स्वः।

इस मंत्र में गौ शब्द पढ़ा है। गौ शब्द का कारण सहित अर्थ बताते हुए निरुक्ताचार्य महर्षि यास्क कहते हैं–

गौरिति पृथिव्या नामधेयम्। यद् दूरं गता भवति, यच्चास्यां भूतानि गच्छन्ति।

(निरु. अ. 2 खंड 5)

अर्थात् गौ नाम पृथ्वी का है। क्योंकि वह अपने अक्ष पर दूर तक चलती रहती है और उस पर सभी प्राणी चलते हैं। पृथ्वी की माता समुद्र अर्थात् जल है। (क्योंकि जल के ऊपर पृथ्वी स्थित है) और पिता सूर्य कहा गया है। पृश्नि का अर्थ अन्तरिक्ष है प्रयन् का अर्थ है गति, परिक्रमा करना। इस प्रकार उक्त मंत्र का अर्थ हुआ कि यह पृथ्वी अन्तरिक्ष का अतिक्रमण करती हुई अपने जन्मदाता समुद्र तथा पिता सूर्य के मध्य अपने अक्ष पर चलती हुई सूर्य की परिक्रमा करती रहती है। स्पष्ट है कि विज्ञान का महान् तथ्य पृथिवी का अपने अक्ष पर चल कर सूर्य की परिक्रमा करना वेद के अन्दर विद्यमान है। पुनः ऋग्वेद का एक मंत्र देखें–

या गौर्वर्तनिं पर्येति निष्कृतं,
पयो दुहाना व्रतनीरवारतः।
सा प्रब्रुवाणा वरुणाय दाशुषे,
देवेभ्यो दाशद्धविषा विवस्वते॥

(ऋ. 10/65/6)

इस मंत्र में उसी गौ अर्थात् पृथिवी का उल्लेख है जो अपने (निष्कृतं) निश्चित किये हुए (वर्तनिं) मार्ग या अक्ष पर चलती हुई अपने ऊपर निवास करने वाले प्राणियों को फल, फूल, रस, तृण आदि प्रदान करती हुई दानी एवं उत्तम कर्म करने वाले विद्वानों को सुख प्रदान करती हुई (पर्येति) निरन्तर सूर्य की परिक्रमा करती रहती है। इस प्रकार इस मंत्र ने भी यह सिद्ध कर दिया कि पृथिवी सूर्य की परिक्रमा करती है और (निष्कृतं) अर्थात् उसके लिए प्रभु ने मार्ग निश्चित कर दिया है। ऋग्वेद का एक अन्य मंत्र भी इस विषय पर अच्छा प्रकाश डालता है। मन्त्र इस प्रकार है–

चक्राणासः परीणहं पृथिव्या,
हिरण्येन मणिना शुम्भमानः।
न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं,
परि स्पशो अदधात् सूर्येण॥

(ऋ. 1/33/8)

अर्थात् जिस प्रकार सूत्र में बाँधकर कोई व्यक्ति किसी वस्तु को अपने चारों ओर घुमावे, उसी प्रकार यह पृथिवी अपने मार्ग का अतिक्रमण करती हुई चक्राकार घूम रही है। स्पष्ट है कि सूर्य के आकर्षण से आकर्षित हो पृथिवी उसके चारों ओर चक्कर लगाती हुई दीखती है।

जैसे ऊपर उद्धृत मन्त्रों ने यह स्पष्ट किया है कि पृथिवी सूर्य की परिक्रमा करती है उसी प्रकार ऋग्वेद का एक अन्य मन्त्र इस बात को प्रमाणित करता है कि हमारा चन्द्रमा भी पृथिवी के चारों ओर परिक्रमण करता है और इस प्रकार चक्कर लगाता हुआ कभी-कभी वह पृथिवी और सूर्य के मध्य भी आ जाया करता है। मन्त्र इस प्रकार है–

त्वं सोम पितृभिः संविदानोऽनुद्यावा-
पृथिवी आततन्थ।

(ऋ. 8/48/13)

शास्त्र में चन्द्रमा का पिता अग्नि तथा माता को जल बताया है। सूर्य अग्नि का पुंज भूत है। अतः मन्त्र कहता है कि हे सोम! (चन्द्रमा) तू अपने पिता अग्नि अर्थात् सूर्य से बातें करता हुआ या उसकी निकटता में होता हुआ सूर्य और पृथिवी के पीछे फैल रहा है। स्पष्ट है कि पृथिवी सूर्य की परिक्रमा करती है और चन्द्रमा पृथिवी का परिक्रमण करता है। दोनों बातें वेदों से स्पष्ट प्रमाणित हो रही हैं। उक्त दोनों विषय विज्ञान के ज्वलंत तथ्य हैं जिनका मूल वेद में विद्यमान है। इन मन्त्रों के रहते हुए कौन कह सकता है कि वेद विज्ञान विहीन है?

यह सभी जानते हैं कि आकाश में सूर्य, चन्द्र और तारे चमक रहे हैं। सूर्य प्रकाश तथा ऊष्मा का पुंज है पर चन्द्रमा की क्या स्थिति है? सामान्यतया वह भी प्रकाशित ही दृष्टिगोचर होता है परन्तु रहस्य वेद बतलाता है। वेद का कथन है–

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधिश्रितः॥

(ऋ. 10/85/1)

अर्थात् इस भूमि को विस्तृत आकाश में नित्य परम सत्य ब्रह्म तथा सूर्य ने सँभाल रखा है। सारे प्रकाश पुंज को सूर्य ने सम्भाल रखा है। काल, महीने, सूर्य की किरण और वायु ने भी सूक्ष्म और स्थूल मरु रेणुओं आदि पदार्थों को धारण कर रखा है–

"**दिवि सोमो अधिश्रितः**" **दिवि द्योतनात्मके सूर्यप्रकाशे सोमश्चन्द्रमा अधिश्रितः आश्रितः सन् प्रकाशितो भवति**। अर्थात् चमका देने वाले सूर्य के प्रकाश में चन्द्रमा उसके आश्रित होकर प्रकाशित होता है। स्पष्ट है कि चन्द्रादि लोकों में स्वयं का प्रकाश नहीं है। विज्ञान के इस रहस्य का उद्घाटन वेद ही करता है इससे स्पष्ट है कि वेद विज्ञानमय है। यजुर्वेद अ. 18 के 44वें मन्त्र की व्याख्या करता हुआ शतपथ ब्राह्मण

का ऋषि लिखता है–

अथाप्यस्यैको रश्मिः चन्द्रमसं प्रति दीप्यते।

अर्थात् इस सूर्य की एक ही किरण चन्द्रमा को प्रकाशित कर देती है। यह इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त सक्षम प्रमाण है कि चन्द्रमा सूर्य के ही प्रकाश से प्रकाशित होता है। उसमें अपना निजी प्रकाश नहीं है।

कहा जाता है कि वृक्ष से टूटकर गिरते हुए एक सेब को देखकर महामति न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त निर्धारित किया था। पर क्या उक्त तथ्य उससे पूर्व अज्ञात था? तथ्य सार्वकालिक था पर न्यूटन अथवा अन्यों को उसका बोध न था। विचारक ने विचार किया और उसे अपनी धारणा में धारण किया। पर वेदों में यह विचार मानवी सृष्टि के आदि में ही दे दिया गया था। यजुर्वेद ने इस तथ्य को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है–

आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन् अमृतं मर्त्यंच।

(यजु. 33/43)

अर्थात् सूर्य सभी प्राणियों में विविध रसों के रूप में अमृत प्रवेश कराता हुआ (रजसा) सारे लोक लोकान्तरों को अपनी आकर्षण शक्ति से धारण करता हुआ सबको व्यवस्था में रख रहा है। स्पष्ट है कि आकर्षण शक्ति की विद्या का मूल भी वेद में विद्यमान है। इसी के आधार पर **महाखगोलज्ञ श्री भास्कराचार्य** ने भूमि के अन्दर विद्यमान गुरुत्वाकर्षण शक्ति को व्यक्त करते हुए महामति न्यूटन से बहुत पूर्व लिखा था–

आकृष्टशक्तिश्च महीतया यत्
स्वस्थं गुरुः स्वाभिमुखं स्वशक्त्या।
आकृष्यते तत् पततीति भाति,
समं समन्तात् क्व पतत्वियं खे॥

अर्थात् पृथिवी में महान् आकर्षण शक्ति है। अपने अन्दर स्थित इसी शक्ति से वह पदार्थों को अपनी ओर खींचती है जिससे वह पदार्थ गिरता हुआ प्रतीत होता है। न्यूटन ने यही तो प्रश्न किया था कि सेब टूटकर पृथिवी पर क्यों गिर गया? आकाश की ओर क्यों नहीं गया? ज्योतिर्विद् श्री भास्कराचार्य ने न्यूटन से शताब्दियों पूर्व यह उत्तर दे दिया था कि पृथिवी अपने अन्दर स्थित आकर्षण शक्ति से उसे अपनी ओर खींचती है इसी कारण वह आकाश की ओर न जा सका। क्या यह तथ्य वेद के विज्ञानमय होने का जाज्वल्यमान प्रमाण नहीं है?

आज के उड़ते हुए वायुयानों को देखकर संसार चकित है और उसे पश्चिम की आधुनिकतम देन समझ कर सहस्त्र मुख से पश्चिम की सराहना में रत है। दुनियाँ जानती है कि **आरविल और राइट** बन्धुओं ने सन् 1903 ई. में वायुयान को चलाया। इससे पूर्व भारतवर्ष में उड़नखटोलों के नाम पर मात्र दंतकथायें चल रही थीं। पर यह किसी को भी ज्ञात न था कि एक समय ऐसा भी था जब भारत का बच्चा-बच्चा वायुयान से परिचित था। अतः आयें इस सन्दर्भ में भी देखें कि वेदों का इससे कितना सम्बन्ध है। ऋग्वेद में एक स्थल पर इसका उल्लेख मिलता है–

तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयिं न
कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः।
तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्ष-
प्रुद्भिरपोदकाभिः।

(ऋ. 1/116/3)

इस मन्त्र में तुग्रो, उदमेघे, अवाहा, ऊहथुः, नौभिः, आत्मन्वतीभिः अन्तरिक्षप्रुद्भिः, अपोदकाभिः अश्विना पद आये हैं जो विचारणीय हैं। तुग्र पद तुज हिंसाबलादाननिकेतनेषु धातु से बने होने के कारण शत्रु हनन और विजय तथा धन की कामना करने वाले को कहते हैं। (उदमेघे) समुद्र में (अवाहा) आने जाने वाला (ऊहथुः) पुरुष व्यत्यय से प्रथम पुरुष ऊहतुः के स्थान पर मध्यम पुरुष में है जिसका अर्थ हुआ आने जाने वाला (नौभिः) जल में चलने वाली नावों के द्वारा (आत्मन्वतीभिः) जिसमें स्वयं या आत्मीयजन बैठ सकें उनके द्वारा (अन्तरिक्षप्रुद्भिः) आकाशचारी यानों के द्वारा (अपोदकाभिः-अप + उदकाभिः) जिनके ऊपर पानी का कुप्रभाव न पड़ सके, जो सड़-गल न सके उनके द्वारा, (अश्विना) वायु और जल के द्वारा अथवा जल और अग्नि के द्वारा (धनंजय के रूप से वायु और विद्युत् रूप से अग्नि प्रत्येक पदार्थ में व्याप्त है अथवा ज्योति रूप से अग्नि और रस रूप से जल सब में विद्यमान है) इस स्पष्टीकरण के साथ मन्त्र का यह अर्थ हुआ कि जो शत्रुओं का हनन, धन आदि का उपभोग और विजय की कामना करने वाला है वह उक्त अभिलाषा की पूर्ति के लिए धातुओं अथवा काष्ठ के ऐसे यान बनावे जिनमें वायु जल और अग्नि के सहयोग से शक्ति आ जाए जो आकाश में उड़ सके या पानी में चलते हुए भी उसके प्रभाव से बच सके। ऐसे यानों के द्वारा समुद्र या आकाश में आने-जाने वाला दुःख सहन नहीं करता अर्थात् सदा सुखी रहता है।

स्मरण रहे वेद में भूमि जल और आकाश में चलने वाले तीनों मार्गों का न केवल स्पष्ट उल्लेख ही है अपितु मार्गों के तीनों विभागों के नियन्त्रकों तक का स्पष्ट उल्लेख है। वेद में प्रायः स्थलमार्ग के नियामक को "**पूषन्**", जलमार्ग के नियामक को "**वरुण**" और आकाशमार्ग के नियामक को "**सविता**" कहा गया है। ऋग्वेद में आता है–

ये ते पंथा सवितः पूर्व्यासो
अरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभिः
रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव॥

(ऋ. 1/35/11)

मन्त्र में आकाशमार्ग में यात्रा करने वाले जन अन्तरिक्षमार्ग के नियंत्रक सविता देव से कह रहे हैं कि हे सविता देव! आकाश में धूल रहित, पूर्व्यासः पुराने और भली प्रकार बने हुए जो मार्ग हैं, जिन पर यात्रा करना सुगम है, आप उन मार्गों में हमारी रक्षा करें और हमें सही मार्ग बतावें। स्पष्ट ही इस मन्त्र में आकाशमार्ग का उल्लेख है। आकाशमार्ग से वायुयान द्वारा ही यात्रा की जा सकती है। अतः वायुयान का मूल वेद में विद्यमान है। उसी वेद में दूसरे स्थल पर जलपोत और वायुयान दोनों का उल्लेख स्पष्ट रूप से पाया जाता है।

मन्त्र इस प्रकार है–

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण
पतताम् वेद नावः समुद्रियः।

(ऋ. 1/25/7)

यह मन्त्र कह रहा है कि हे मानव! आकाशमार्ग से उड़ने वाले (वीनां) वायुयानों तथा समुद्री नावों अथवा जलयानों को जानो। उनका सम्यक् ज्ञान प्राप्त करो। पुनः वेद कहता है–

ये ते पन्थानो बहवो देवयाना
अन्तरा द्यावा पृथिवी संचरन्ति।
ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन
यथा क्रीत्वा धनमाहराणि।

(अथर्व. 3/15/2)

अर्थात् पृथिवी और द्यु लोक के मध्य अन्तरिक्ष में दैवी (विद्युत् चालित) यान जिस किसी मार्ग से चले, उनमें दूध और घृत की व्यवस्था होनी चाहिए जिससे हम व्यापार से धनोपार्जन कर सकें। यहाँ आकाश मार्ग में ही दूध-घृत की व्यवस्था की माँग की गयी है। भला इससे बढ़कर समृद्ध व्यवस्था और क्या होगी? यही नहीं, सौ-सौ मस्तूलों वाले जलपोतों का वेद में उल्लेख है। यथा–

समुद्रे शतारित्रां नावम्।

(अथर्व. 17/1/25)

अर्थात् समुद्र में सौ मस्तूलों वाले जहाज चलते हैं। इन जलपोतों की यान्त्रिक स्थिति क्या होगी? कितने बड़े जलपोत रहे होंगे, इसकी कल्पना भी आज करना सम्भव नहीं है। यही नहीं, वेद में ऐसे यानों का उल्लेख पाया जाता है जो आकाश, पृथिवी और समुद्र तीनों में सफलता पूर्वक चल सकते थे। उदाहरण के लिए निम्नलिखित मन्त्र द्रष्टव्य है–

अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो,
रथस्त्रिचक्रः परिवर्तते रजः।

(ऋ. 4/36/1)

अर्थात् ऐसा रथ जिसमें घोड़े नहीं होते हैं, लगाम नहीं है पर वह अपना मार्ग परिवर्तित कर तीनों स्थानों (आकाश, जल और पृथिवी) में चलता है। इस प्रकार हमने देखा कि वेद में वायुयान तथा जलपोतों का विशद वर्णन है। इतना ही नहीं, हमारा सारा सत् साहित्य एतद् विषयक प्रमाणों से भरा हुआ है। रामायण में पुष्पक नामक विमान का पाठक अनेक बार उल्लेख पायेंगे।

महाभारत में भी अनेक स्थलों पर वायुयानों का उल्लेख उपलब्ध होता है। श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार शल्य का वायुयान पृथिवी, आकाश, जल, पर्वत सर्वत्र समान रूप से जा सकता था। पुराण कहता है–

स लब्ध्वा कामगं यानं, तपोधाम दुरासदम्।
ययौ द्वारावतीं शल्यः वैरं, वृष्णिकृतं स्मरन्।
क्वचित् भूमौ क्वचित् व्योम्नि,
गिरिशृंगे जले क्वचित्।।

अर्थात् इस इच्छानुसार चलने वाले अत्यन्त विकराल वायुयान को पाकर शल्य यदुवंशियों की शत्रुओं का स्मरण करता हुआ द्वारिकापुरी गया। वह विमान कभी भूमि, कभी आकाश, कभी जल और कभी पर्वतों के शिखर पर जहाँ जैसा अवसर पाता था वहाँ वैसा चलता था।

● **(शेष अगले अंक में)**

वन्दे गुरुकुलमातरम्

– डा0 प्रतिभा पुरन्धि
असिस्टैण्ड प्रोफेसर संस्कृत विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

वात्सल्य, तप, त्याग की समुद्र हमारी मातृकल्पा गुरु माँ श्रद्धेया पूजनीया **आचार्या मेधा देवी जी** के ब्रह्मलीन होने पर मैं अपने आपको जहाँ निराश्रित निर्बल समझ रही थी वहीं उनके अन्तिम दर्शन भी न कर पाने के कारण भीतर-ही-भीतर क्षुब्ध हुई गहरे अपराध बोध को भी महसूस कर रही थी कि अकस्मात् मेरे प्रति अपार अनुराग बिखेरने वाली मेरी सम्माननीया बहिन **आचार्या नन्दिता जी** ने 30, 31 जुलाई व 1 अगस्त में आयोज्यमान वेदसंगोष्ठी के लिए दूरभाष द्वारा निमन्त्रण दिया। मैंने तुरन्त इसे स्वीकार किया और वाराणसी प्रस्थान हेतु सन्नद्ध हो गई।

जम्मू से वाराणसी ट्रेन यात्रा में मेरे भर्त्ता डा0 नरेश बत्रा जी भी मेरे साथ थे। पच्चीस वर्ष पूर्व गुरुकुल में बिताये गये ग्यारह वर्षों की विभिन्न स्मृतियों का आलोक मेरे स्मृतिपटल के झरोखों से आता और जाता रहा। 30 जुलाई की मध्याह्न लगभग एक बजे हम दोनों गुरुकुल के भव्य मुख्य द्वार पर पहुँच गये। आज मुझे चिर प्रतीक्षित चिराभिलषित अपनी गुरुकुलभूमि के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हो रहा था।

न जाने क्यों क्षणभर को ऐसा आभास हुआ जैसे पूर्ववत् आज भी मेरे आगमन की सूचना सुन हमारी वन्दनीया पूजनीया आचार्या माँ दौड़ कर आएँगी और 'प्रतिभा तू आ गई' कहते हुए हृदय से लगा लेंगी और मैं अपनी माँ के सुखद स्पर्श से रोमाञ्चित हुई संसार के सर्वाधिक आनन्द की अधिकारिणी बनूँगी पर **आचार्या नन्दिता जी**, **आचार्या सूर्या जी, सम्मान्या प्रियंवदा जी** तथा **प्रिय प्रीति विमर्शिनी जी** को अपने समक्ष देखकर मेरी तन्द्रा टूटी और वास्तविकता का बोध हुआ। हृदय में गहरी टीस उठी, मैंने जैसे तैसे अपने आपको सम्भाला। इन्होंने बड़ी आत्मीयता तथा स्नेहपूर्वक हमारा स्वागत किया। और गुरुकुल परिसर के समीप ही विशाल उत्तम भवन में हमारे निवास की व्यवस्था भी की।

त्रिदिवसीय यह संगोष्ठी सफल रही। इसके विषय थे– **वेदार्थ निरूपण में व्याकरण**, **कल्प तथा ज्योतिष का योगदान**। कानपुर, लखनऊ, बरेली, अमेठी, जम्मू, अम्बाला, दिल्ली, उज्जैन आदि दूरस्थ नगरों से आए विद्वानों ने अपने-अपने पत्रों को विद्वत्ता, पाण्डित्य एवं पूर्ण गरिमा से प्रस्तुत किया। 31 जुलाई को रात्रि में कवि सम्मेलन हुआ जिसमें कविवृन्द ने अपने उत्तम सुललित पद्यों से सभी को मन्त्रमुग्ध कर दिया।

इन तीनों दिन मेरा अन्तर्मन अपने चहुँ ओर रिक्तता शून्यता तथा उदासी को महसूस करता हुआ किसी सशक्त आश्रय को ढूँढ रहा था। बालिकाओं के उत्तम निर्माण तथा कम से कम समय में अधिकाधिक कृत्य सम्पन्न कर लेने की हृदय में तड़प, उनके व्याख्यानों में स्पष्टतः उद्भासित होती थी पर उस ओजस्वी, तेजस्वी व्यक्तित्व का अस्तित्व कहीं भी श्रुतिगोचर न था। न जाने क्यों मुझे महसूस हो रहा था कि अपने उत्तमोत्तम कार्यक्रमों को प्रस्तुत करते हुए, सबकी देखभाल करने वाली, सब पर वात्सल्य बरसाने वाली अम्मा जी के अभाव में बालिकाएँ मुरझाई हुई सी हैं। स्वयं **आचार्या**

नन्दिता जी भी यद्यपि बड़ी सूझबूझ पूर्वक, धैर्य, विनम्रता से चारों तरफ के कार्यों का निरीक्षण करती हुई, अतिथि विद्वानों की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करती हुई, मञ्चीय कार्यक्रमों के पूर्वापर हर प्रकार का सूक्ष्म निरीक्षण, व्यवस्था करती हुई बड़े उत्साह, स्फूर्ति तथा पूर्ण संजीदगी से लगी हुई थीं किन्तु विद्यालयरूपी भवन की नींव के विशीर्ण होने का दर्द उनके मुखमण्डल पर भी स्पष्ट झलक रहा था।

पुनरपि यह तथ्य सुस्पष्ट है कि इस गुरुकुल की संस्थापिका, भारत की अद्वितीय विदुषी चहुँमुखी प्रतिभा की धनी **आचार्या डा0 प्रज्ञा देवी जी** एवं **आचार्या मेधा देवी जी** ने ठोस एवं सुदृढ आधारस्तम्भ तैयार किए हैं जिन पर यह विद्यालय रूपी भवन सुदीर्घकाल तक सुस्थिर रहेगा। श्रद्धेया बड़ी आचार्या जी तथा छोटी आचार्या जी के पदचिह्नों पर चलते हुए आचार्या नन्दिता जी, आ0 प्रीति विमर्शिनी जी का निःस्वार्थ त्यागमय सहयोग लेकर जिस परिश्रम, कर्मठता, कला, प्रतिभा, योग्यता, मनोवैज्ञानिकता के साथ बालिकाओं का निर्माण कर रही हैं, उस की कहानी इस शोध संगोष्ठी के मध्य हुए बालिकाओं के उत्तम कार्यक्रम स्पष्टतया कह रहे थे। प्रथम दिन सायङ्काल आकर्षक ढंग से तलवार सञ्चालन तथा धनुर्विद्या का प्रदर्शन भी हुआ। रात्रि को सत्य सनातन वैदिक धर्म के सिद्धान्तों पर नाटिका का सफल प्रदर्शन हुआ। जिसकी उपस्थित लोगों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। शास्त्रीय संगीत, भजन व सामगायन आदि की भी उत्तम प्रस्तुति की गई।

यूँ तो इस संगोष्ठी की सम्पूर्ण प्रस्तुति भव्य थी किन्तु इस का वैलक्षण्य तथा वैशिष्ट्य था– पाणिनि कन्या महाविद्यालय के पाणिनि मन्दिर सभागार में दिग्दिगन्त को पवित्र व झञ्कृत करता हुआ सुदूरस्थ स्थानों से आए हुए विविध वेदपाठियों के मुख से उच्चरित वेद पाठ। जो प्रत्येक सत्र के आरम्भ में उच्चारित हो था।

प्रत्येक वेद के भिन्न-भिन्न शाखाओं का वेदपाठ करने वाले अनेक वेदपाठियों को इस संगोष्ठी में सादर आमन्त्रित किया गया था। सत्रारम्भ में वे वेदपाठी जब अपनी-अपनी पद्धतियों से वेदों के प्रकृति व विकृतिपाठ जिनमें लम्बे-लम्बे जटा, माला, शिखा, रेखा, ध्वज, दण्ड, रथ, घन पाठ तथा अनेक प्रकार के श्रुतिमधुर विभिन्न प्रकार के सामगायन प्रस्तुत करते तो जहाँ चहुँ ओर आनन्द की धारा, प्रवाहित होती वहीं आज के भौतिक वातावरण में भी वेदों की रक्षा के लिए कृतसंकल्प इन वेदपाठियों के श्रम व साधना को देखकर हम विस्मित हुए बिना नहीं रह सके।

वस्तुतः ये गुरुकुल हम सब के लिए ऐसी तीर्थ स्थली है जो संसारिक निराशा, हताशा, कटुता व चञ्चलता से उबाकर हमें शान्ति निवृत्ति के मार्ग पर अग्रसर करती है।

अन्त में 1 अगस्त मध्याह्न की वह वेला भी आ पहुँची जब हमें इस रमणीय आश्रम से अलग होना था **आचार्या नन्दिता जी** ने सजगता से जहाँ हमारे लिए पाथेय की व्यवस्था की वहीं इन तीन दीनों में हमने भी बहुत कुछ संगृहीत कर लिया था। आचार्या नन्दिता जी तथा प्रिय प्रीति विमर्शिनी का स्निग्ध सौहार्द, गुरुकुल की सुहानी स्मृतियाँ, अनुभूतियाँ, जीवन में नई ऊर्जा नए संकल्प तथा नवोत्साह का संचार करती हैं जिन्हें सुदीर्घकाल के लिए हृदय में संजोकर हम भरे हृदय से जम्मू के लिए वापिस चल पड़े थे। ●

– पूर्व स्नातिका, पाणिनि कन्या महाविद्यालय

शारदीय नवरात्र पर विशेष–

शास्त्रों के ज्ञान के साथ शस्त्र का संधान भी

– प्रमोद यादव

वाराणसी, 30 सितंबर, 2011, **दैनिक जागरण**

शक्ति आराधन पर्व युगों-युगों से यह संदेश देता चला आ रहा है कि भारत में नारी कभी अबला नहीं रही। मानवता पर संकट आया तो दुर्गा और काली बनकर आसुरी-शक्तियों का समूल नाश किया। देवी के रूप में पूजी गयीं। देश पर संकट के बादल छाये तो झांसी की रानी और रानी दुर्गावती बन कर दुश्मनों के दांत खट्टे किये। भारतीय दर्शन के इसी तत्व को आत्मसात् करते हुए पाणिनि कन्या महाविद्यालय, बालिकाओं को शस्त्र और शास्त्र में पारंगत कर रहा है। सूत्र वाक्य है– '**शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्र- चर्चा प्रवर्त्तते।**'

- **पाणिनि कन्या महाविद्यालय : वेद की ऋचाओं से संस्कार का बीजारोपण**
- **'शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्र चर्चा प्रवर्त्तते' सूत्रवाक्य बना आधार**

महमूरगंज स्थित **पाणिनि कन्या महाविद्यालय** परिसर में प्रवेश करते ही अनूठी आभा से मन का कोना-कोना श्रद्धा भाव से भर उठेगा। जुबान पर शास्त्र और वेद की ऋचाएँ तो हाथ में शस्त्र धारण किए बालाएँ। मानो सरस्वती व महाशक्ति का स्वरूप एकाकार हो आया हो। तलवारबाजी के हैरतअंगेज करतब और धनुर्विद्या में पारंगत। भाला सहित अन्य शस्त्रों का संधान तो घुड़सवारी में भी पूरी निपुणता। बदलते जमाने के लिहाज से जूडो और मार्शल आर्ट में भी हर बालिका-किशोरी-युवती दक्ष। वहीं वेद-वेदांग, निरुक्त-व्याकरण-अष्टाध्यायी, महाभाष्य, दर्शन व कर्मकाण्ड तो मानो जुबान पर रटा हुआ। देवभाषा का उच्चारण ऐसा कि प्रकाण्ड विद्वानों का भी जोश ढीला पड़ जाए। समभाव की क्यारी में संस्कार की फुलवारी पुष्पित-पल्लवित हो रही है। यही नहीं शस्त्र व शास्त्र विद्या के वृक्ष की शाखाएँ सात समंदर पार भी फैल चुकी हैं। पूर्व छात्राएँ विभिन्न देशों में भारतीय संस्कृति और रीति-नीति को प्रसारित करने में जुटी हैं। वह नारी को उसकी शक्ति का अहसास कराते हुए आत्मविश्वास व स्वावलंबन के मजबूत धागे में पिरो रही हैं। विवाह हो या पूजन-अर्चन इसमें भी छात्राएँ पुरोहित की भूमिका निभाती हैं।

महाविद्यालय की **आचार्या नन्दिता शास्त्री** कहती हैं– पूर्णतः आवासीय केन्द्र में प्राचीन गुरुकुलीय आर्ष शिक्षा पद्धति से कन्याओं को संस्कृत साहित्य का विद्या दान किया जाता है। वहीं बालिकाओं के सर्वांगीण विकास के लिए, वेद-वेदांग, निरुक्त, व्याकरण, अष्टाध्यायी, महाभाष्य, दर्शन व कर्मकाण्ड की शिक्षा दी जाती है। महिला का स्वावलंबी होना निहायत ही जरूरी है। ऐसे में आधुनिक विषयों यथा-गणित, अंग्रेजी, कम्प्यूटर, सिलाई-कढ़ाई जैसे

व्यावसायिक प्रशिक्षण भी दिए जाते हैं।

दाखिले की उम्र छह से नौ वर्ष और छात्राएँ विभिन्न प्रांतों के साथ ही मारीशस, नेपाल, भूटान व रूस तक की। जात-पात व अदना-आला की सीमाओं से परे एक भाव केवल समभाव लिये। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध इस कॉलेज में प्रथमा से आचार्य तक की शिक्षा के साथ निरन्तर प्रशिक्षण भी जारी रहता है। अग्र शिष्य शिक्षा प्रणाली के तहत वरिष्ठ छात्राएँ जूनियर कक्षाओं में अध्यापन करती हैं। आचार्या डॉ0 नन्दिता शास्त्री स्वयं इस परम्परा से गुजरकर यहाँ तक पहुँची हैं। डॉ. प्रीति विमर्शिनी, संजीवनी, प्रियंका आर्या समेत कई पढ़ाई पूरी करने के बाद यहीं बहनों को विदुषी बनाने में जुटी हैं।

वहीं कई हैदराबाद, नजीबाबाद, राजस्थान, कानपुर, कुरुक्षेत्र आदि में अभियान को कन्या गुरुकुल स्थापित कर आगे बढ़ा रही हैं। छात्राओं ने बर्लिन, जर्मनी, हालैण्ड, स्पेन, जापान आदि देशों में वेदों का सस्वर घनपाठ, शास्त्रीय गायन प्रस्तुत कर प्रशंसा बटोरी है तो कई वहीं विद्यादान करने भी जा चुकी हैं।

गुरु दक्षिणा के रूप में स्थापना– महाविद्यालय के स्थापना की बात करें तो सतना से विद्याध्ययन के लिए आई **डा. प्रज्ञा देवी-आचार्या मेधा देवी जी** ने **गुरु पद्मविभूषण पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु महाराज** को दक्षिणा के रूप में दिए वचन के क्रम में 1971 में मोतीझील में इसकी स्थापना की थी। बाद में इसे महमूरगंज स्थित भवन में स्थापित किया गया। नाम दिया गया, **पाणिनि कन्या महाविद्यालय**। सारे मिथकों को तोड़ते चार दशकों से यह महा अभियान आज भी जारी है।

●

।। फ्री सस्वर यजुर्वेद पाठ शिक्षण व्यवस्था ।।

इन्टरनेट, B.S.N.L. और RELIANCE POST PAID नम्बर से सीखें।

सम्मान्य पाठक! आप सब को सूचित करते हुये हमें अपार प्रसन्नता है कि **आचार्य आर्य वेद जी**, मैसूर द्वारा दिनांक **17 अक्टूबर, 2011** से सायं 7:15 से 8:20 तक फ्री सस्वर यजुर्वेद पाठ शिक्षण की व्यवस्था इन्टरनेट के माध्यम से दी जा रही है। आप सब इसका भरपूर लाभ उठायें।

मो0– 7760223354 (B.S.N.L.), 9379746451 (RELIANCE)
Skype ID - 1. Veda.arya 2.veda.vrata,
Email ID - omvedas.arya@gmail.com, omarya.veda@yahoo.com,
Facebookororkut :- Arya Veda

वेदार्थरक्षण में कल्प साहित्य का योगदान

– डा. प्रियंवदा वेदभारती
नजीबाबाद, हरिद्वार

कल्प्यते समर्थ्यते इति कल्पः। कल्प शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ मात्र समर्थन कल्पना या समुद्भावना है किन्तु यह शब्द आगे चलकर वेदविहित कर्म या यज्ञ के पर्यायवाची के रूप में और तत्प्रतिपादक शास्त्रों में कैसे प्रतिष्ठित हो गया इस विषय में वैदिक वाङ्मय के पारदृश्वा मनीषियों का कथन है कि वेदों में विशेषरूप से अथर्ववेद तथा यजुर्वेद में राजसूय, अग्निष्टोम, आश्वमेध, अग्न्याधेय, षोडशी आदि श्रौत यागों, त्रिविध अग्नियों, सोम आसन्दी वेदि यूपादि यज्ञिय पदार्थों, प्रयाज अनुयाज वषट्कार आश्रावण प्रत्याश्रावण आदि यज्ञिय क्रियाओं तथा **समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन** जैसे यज्ञयाग सम्बन्धी स्पष्ट संकेतों के आधार पर साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों ने अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध तथा सहस्र संवत्सर साध्य सत्र पर्यन्त यज्ञों की कल्पना की। इसी कारण यज्ञों को 'कल्प' यह अन्वर्थक नाम प्राप्त हुआ और इनके प्रतिपादक ग्रन्थों को कल्पशास्त्र के नाम से जाना गया। कल्पशास्त्र वैदिक वाङ्मय का एक बृहत्तम भाग है, यह श्रौत, गृह्य, धर्म, शुल्ब सूत्रों में उपबृंहित है। साक्षात् निरतिशय परब्रह्म से प्रकट होने के कारण परमपवित्र वेदों के स्वरूप तथा अर्थ के संरक्षण के निमित्त अल्पमति मनुष्यों के लिए वेदांगों का प्रादुर्भाव हुआ। वेदांग साहित्य का जन्म उपनिषत्काल तक हो चुका था क्योंकि मुण्डकोपनिषद् में अपरा विद्या के प्रसङ्ग में षडङ्गों का नामोल्लेख प्राप्त होता है–

तत्रापराऋग्वेदोयजुर्वेदःसामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति॥

अस्तु! वेद के स्वरूप तथा अर्थ संरक्षण में सभी वेदांगों का अपना-2 महत्व है। यहाँ कल्पसाहित्य के योगदान के विषय में ही किञ्चित् विवेचन किया जा रहा है।

कल्पों का आविर्भाव तथा महत्त्व–

कल्प साहित्य का आविर्भाव ब्राह्मण ग्रन्थों में विस्तीर्ण यज्ञ-याग की प्रक्रिया को संक्षिप्त तथा व्यवस्थित करने के लिए हुआ ऐसा माना जाता है। **कल्पो वेदविहितानां कर्मणाम् आनुपूर्व्येण कल्पनाशास्त्रम्**। कल्पग्रन्थ वेदरूपी पुरुष के हस्ततुल्य है। जिस प्रकार हाथों से कोई भी वस्तु पकड़ी जाती है और रक्षित भी की जाती है। उसी प्रकार कल्पशास्त्र द्वारा वेदों का याज्ञिक अर्थ सम्पूर्णता से जाना जाता है और रक्षित भी किया जाता है। हस्त विहीन पुरुष क्रियाशून्य होने से महत्व हीन हो जाता है। वेद भी कल्प रहित अर्थात् विनियोग रहित होने पर महत्व हीन हो जाते हैं। विनियोगों से मन्त्र और मन्त्रार्थ दोनों ही सुरक्षित रहते हैं। इस प्रकार जिन यज्ञ-यागादि तथा विवाह उपनयन आदि कर्मों का विशिष्ट प्रतिपादन वेद अथवा ब्राह्मण ग्रन्थों में किया जाता है उन्हीं का

क्रमबद्ध निरूपक शास्त्र, कल्पशास्त्र है। कल्पशास्त्र के बिना मनुष्यों के लौकिक वैदिक कर्मकाण्ड गतिहीन हैं, पंगु हैं। कल्पों की कर्मकाण्ड में दक्षता देखकर ही भट्ट कुमारिल ने अर्थवादरूप में कहा– **वेदादृतेऽपि कुर्वन्ति कल्पैः कर्माणि याज्ञिकाः। न तु कल्पैर्विना केचिन्मन्त्र-ब्राह्मणमात्रकात्**।

कल्प और वेदार्थ– वेद तथा वेदार्थ रक्षण में कल्पशास्त्रों की उपयोगिता निस्सन्दिग्ध है, जब यज्ञों में '**इषे त्वा**' मन्त्र बोलकर पलाश शाखा को काटा जायेगा '**ऊर्जे त्वा**' बोलकर शाखा को सन्नमित किया जायेगा, '**हविष्कृदेहि**' बोलकर यजमान को हवि बनाने के लिए बुलाया जाएगा तथा '**भृगूणाम्-अङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम्**' कहते-कहते कपालों को भस्म से आच्छादित किया जाएगा तब तत्तत् वेदमन्त्रों की रक्षा तो होगी ही, यज्ञपरक वेदार्थ भी शब्दार्थ सम्बन्ध से स्वतः रक्षित हो जाएगा। वेदार्थ रक्षण में कल्पशास्त्र की उपयोगिता महर्षि यास्क के अनुसार इस प्रकार समझनी चाहिए कि मन्त्रों के त्रिविध अर्थ होते हैं। प्रथम– आधियाज्ञिक अर्थ यज्ञयाग परक, द्वितीय– आधिदैविक अर्थ भूगोल-खगोल सम्बन्धी होने से विज्ञान परक और तृतीय– आध्यात्मिक अर्थ शरीर आत्मा-परमात्मा भेद से त्रिविध होता है। ये तीनों ही अर्थ अपनी-अपनी दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं, पुनरपि महर्षि यास्क ने इनको उत् उत्तर-उत्तम तीन श्रेणियों में विभक्त किया है। उनकी दृष्टि में मन्त्रों का प्रथम अर्थ है याज्ञिक जो कि आधिदैवत और अध्यात्म का आधारभूत है, द्वितीय कोटि में आधिदैविक अर्थ आते हैं और मन्त्रार्थ की तीसरी सर्वोत्कृष्ट कोटि है आध्यात्मिक अर्थ। निरुक्तकार यास्क के सुन्दर तथा सारगर्भित शब्द इस प्रकार हैं–

अर्थं वाचः पुष्पफलमाह। याज्ञदैवते पुष्पफले देवताध्यात्मे वा यहाँ फूल और फल की कल्पना कर बड़ी सहजता से समझाया गया कि समस्त याज्ञिक प्रक्रिया पुष्प तुल्य है और इस पुष्प का फल है आधिदैविक अर्थ और आधिदैविक तथा आध्यात्मिक अर्थों की तुलना में आधिदैविकार्थ पुष्प स्थानीय हैं और अध्यात्म अर्थ फल-स्थानीय हैं। इस विवेचन के आधार पर मन्त्रों के याज्ञिक अर्थ किसी न किसी आधिदैविक रहस्य की ओर संकेत करते हैं यह सिद्ध होता है। उदाहरणार्थ– यज्ञ यागों के अवसर पर विधीयमान अग्निचयन प्रक्रिया सलिलमयी भूमि की नौ अवस्थाओं का निरूपण करती है, दर्शपौर्णमास याग की 30 (तीस) आहुतियाँ तीस दिन वाले मास का संकेत करती हैं और अश्वमेध याग का विशिष्ट अश्व, अश्व रशना (लगाम) का परिमाण, चार पत्नियाँ, प्रत्येक की सौ-सौ दासियाँ आदि सम्पूर्ण विधि विधान पार्थिव अश्व का संकेत न देकर द्युलोक के आदित्य का ही संकेत करता है। अश्वमेध के अश्व की स्तुति में तथा अश्व योजन में प्रयुक्त होने वाले– **युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परितस्थुषः। रोचन्ते रोचनादिवि** (23/5) **हिरण्यशृंगोऽयो अस्य पादाः** (1/163/9) **ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सं शूरणासो दिव्यासो अत्याः** (1/163/10) आदि मन्त्र भी स्पष्ट ही सूर्यपरक हैं। इन स्थलों को देखकर यजुर्वेद भाष्यकार आचार्य उव्वट को यह कहना पड़ा– **अश्वोऽत्र आदित्यवत् स्तूयते**। अस्तु! एतादृश आधिदैविक

रहस्यों से अभिभूत व्यक्ति अध्यात्म अर्थात् शरीर आत्मा-परमात्मा की यथार्थता को भी जानता हुआ परमात्मा के प्रति अपने को समर्पित कर देता है, अर्थात् चरमलक्ष्य मोक्ष का इच्छुक बन जाता है। इस प्रकार इन तीनों प्रक्रियाओं का परस्पर सम्बन्ध है, कल्पशास्त्र केवल याज्ञिक अर्थ को सुरक्षित रखता है। याज्ञिक अर्थ से उत्कृष्ट आधिदैविक तथा आध्यात्मिक रहस्यों तक पहुँचने के लिये याज्ञिकों को अवश्य प्रयत्नशील होना चाहिये अन्यथा वेदों के साथ महान् अन्याय होगा और महर्षि यास्क निर्दिष्ट परम्परा का महान् अपमान भी।

परम्परागत याज्ञिक अर्थ की ग्राह्यता–

सम्प्रति वैदिक वाङ्मय के नाम पर जो भी साहित्य उपलब्ध हो रहा है वह दर्शपौर्णमास याग से लेकर अश्वमेध पर्यन्त विधि-विधान से या विवाहादि गृह्य विधानों से ओत-प्रोत है। इतना ही नहीं वेदविषयों का निर्देश या प्रतिपादन करने वाले बृहद्देवता सर्वानुक्रमणी आदि ग्रन्थ भी यज्ञ-याग के अतिरिक्त किसी विषय को प्रतिपादित करते दिखाई नहीं देते। पाणिनि व्याकरण के समस्त छान्दस उदाहरण भी प्रायः यज्ञपरक हैं। वैदिक वाङ्मय में व्याप्त यज्ञों के इस प्रभाव को देखते हुये यह तो सुतरां स्पष्ट है कि यह याज्ञिक प्रक्रिया ऋषियों द्वारा पूर्ण अनुमोदित है और चिरकाल से चली आ रही है, किन्तु साथ ही यह भी विचारणीय है कि याज्ञिक प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व करने वाले आचार्य सायण उव्वट महीधर के भाष्यों को प्रमाण मानकर और तद्गत विधि विधान को यथावत् स्वीकार कर लिया जाये तो वेदज्ञानप्रदाता ब्रह्म की पवित्रता, न्याय प्रियता, सर्वज्ञता सन्दिग्ध कोटि में आ जायेगी और महात्मा बुद्ध की भाँति सभी एक स्वर से कहने लगेंगे हम ऐसे वेदों को मानने को तैयार नहीं। दूसरी ओर यदि समस्त यज्ञ प्रक्रिया को नकार दिया जाये तो ऋषि परम्परा विघात का दोष लगेगा, ऐसी स्थिति में हमें तो वेदैकनिष्ठ ऋषि दयानन्द के ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका का यह वाक्य सर्वथा उपयुक्त लगता है– **तस्माद् युक्तिसिद्धो वेदादि-प्रमाणानुकूलो मन्त्रार्थानुसृतस्तदुक्तोऽपि विनियोगो ग्रहीतुं योग्योऽस्ति**।

ऐतरेय, शतपथ ब्राह्मण, पूर्वमीमांसा, श्रौतसूत्रादि में कहे गये विनियोगों को स्वीकृति प्रदान करते हुये भी महर्षि यह कहना नहीं भूलते कि युक्तिसिद्ध, वेदादि प्रमाणों के अनुकूल और मन्त्रार्थ का अनुसरण करने वाला विनियोग ही सर्वदा ग्राह्य है। इस कथन से ऋषि ने अनेक समस्याओं का एक साथ समाधान कर दिया है। पौराणिक विद्वान् ऋषि के इस कथन पर मर्माहत हो उठे। आगरा के **पं. घनश्याम दास जी** इस कथन के विरोध में अपनी पुस्तक **भूमिका धिक्कार** में लिखते हें– दयानन्द ने शतपथादि के अनुसार भाष्य करने की प्रतिज्ञा तो की परन्तु निभा न सके। इस विषय में सम्प्रति विस्तार भय से मेरा तो इतना ही कहना है कि पण्डित जी पहले महर्षि की आन्तरिक पीड़ा को समझें तभी कुछ टीका टिप्पणी करें तो समीचीन होगा। अस्तु।

कल्पसूत्रों की सर्वजनग्राह्यता–

कल्पशास्त्रों को वेदार्थ का उपबृंहक तथा संरक्षक मानते हुये भी मेरी दृष्टि में उनकी सर्वजनग्राह्यता

बनाने के लिये कतिपय निर्णय अवश्य लेने होंगे–

1. यज्ञों में विधीयमान पशुहिंसा अतिप्राचीन ऋषियों को मान्य नहीं थी, ये स्थल या तो प्रक्षिप्त माने जायें या वेदविद्या के वैखानस पं. मीमांसक जी के अनुसार सृष्टि में चल रही आसुरी क्रियाओं के दिग्दर्शक मात्र माने जायें, इन दृश्यों को यज्ञ स्थल पर क्रियान्वयन करना आवश्यक नहीं। इसके अतिरिक्त जिन स्थलों को अपने बुद्धि वैभव से हिंसारहित किया जा सकता है उन्हें अवश्य करना चाहिये। तद्यथा- गृह्यसूत्रों का अष्टका प्रकरण। आग्रहायणी के बाद तीन अष्टकाओं के विधान हेतु सूत्र प्राप्त होता है– **अपूपमांसशाकैर्यथासंख्यम्**।

पहली अष्टका मालपूये से, दूसरी मांस से, तीसरी शाक से। मध्यम अष्टका हेतु सूत्र बनाया **गया-मध्यमा गवा**। बस इस सूत्र के बनते ही सूत्रकार व्याख्या करने लगे यह गोमांस से की जाती है। जरा विचार करें जिस देश में सिंह से गाय की रक्षा हेतु राजा दिलीप ने अपने प्राणों को तुच्छ समझते हुये कहा हो–

सेयं स्वदेहार्पणनिष्क्रयेण न्याय्या मया मोचयितुं भवतः।
न पारणा स्याद् विहतास्तवैवं भवेदलुप्तश्च मुनेः क्रियार्थः।।

अर्थात् वहाँ किसी भी प्रसंग में गाय मारने का विधान है यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है। यहाँ वेदार्थवेत्ता महर्षि यास्क के– **अथापि अस्यां ताद्धितेन कृत्स्नवन्निगमा भवन्ति** कथन का अनुसरण करते हुये **गोः पयसा क्षीरेण वा मध्यमा अष्टका कर्तव्या** यह भी किया जा सकता है अर्थात् गाय के दूध से, खीर से मध्यमा अष्टका की जाये। प्रकरणगत वपा, मांस, ऊवध्य आदि शब्दों के दूसरे भी अर्थ यौगिक प्रक्रिया से सम्भव हैं। इसी प्रकार गृह्यसूत्रों में आये- अवकीर्णि प्रायश्चित्त में गर्दभ का मारण, शूलगव, वृषोत्सर्ग आदि प्रकरणों को भी हिंसारहित सिद्ध किया जा सकता है। हर्ष की बात है कि आर्य जगत् के विद्वानों द्वारा कतिपय गृह्यसूत्रों के हिंसा रहित भाष्य किये भी जा चुके हैं।

2. कल्पसूत्र वेदांगों की रक्षा के लिये बनाये गये यह सत्य है किन्तु बहुत से स्थलों पर ये वेद पर भारी होते हुये दिखाई देते हैं। जिससे यह प्रतीत होता है कि वेदों के लिये कल्पसूत्र नहीं बनाये गये बल्कि इनके विनियोगों के लिये वेदों की रचना की गई जब कि सत्य यह है कि वेद पहले बने, कल्पशास्त्र बाद में। इनका रक्षापरक स्वरूप तभी अक्षुण्ण रहेगा जब यहाँ मनमाने विनियोग न हों, अवैदिक बातें न हों।

3. तृतीय निर्णय यह लिया जाये कि कर्मकाण्ड में मन्त्रों का विनियोग मन्त्रार्थ के अनुकूल ही होगा- "**यत्कर्म क्रियमाणं ऋग्यजुर्वा ऽभिवदति**।" विनियोग गलत होने से भी मन्त्रार्थ की रक्षा नहीं हो सकती, किन्तु खेद की बात है कि उत्तरकाल में जबकि देश में यज्ञों का मान तथा प्रभाव बढ़ा और प्रत्येक कामना के लिये यज्ञों की कल्पना की गई तब उन समस्त क्रियाओं के अनुरूप वेदमन्त्र उपलब्ध न होने पर मन्त्रार्थ की उपेक्षा करके याज्ञिक क्रियाओं के साथ उनका सम्बन्ध जोड़ा गया तद्यथा– ऐन्द्री ऋचा से गार्हपत्याग्निका उपस्थान (**ऐन्द्रया गार्हपत्यमुपतिष्ठते**) और **दधिक्राव्णो अकारिषम्0** मन्त्र बोलकर दधिभक्षण की बात कही गई। ये विनियोग किन्हीं छोटे-मोटे ग्रन्थों के नहीं बल्कि पूर्ण मान्यता

प्राप्त मैत्रायणी संहिता और शांखायन सूत्र के हैं। क्रियाओं हेतु मन्त्र उपलब्ध न होने पर अक्षर मात्र के सादृश्य से भी विनियोग किये गये तद्यथा– **शन्नो देवीरभिष्टये**- मन्त्र से शनेश्चरपूजा, **उद्बुदध्यवाग्ने0** मन्त्र से बुध ग्रह की पूजा का विधान प्राप्त होता है। गृह्यसूत्रों में उष्ट्रारोहण हस्त्यारोहण गर्दभारोहण हेतु नये-नये मन्त्र कल्पित किये गये, प्रभु से कुशलता की प्रार्थना न कर ऊँट, हाथी आदि से प्रार्थना की गई कि आप मुझे कुशल पूर्वक गन्तव्य तक पहुँचाइयेगा। साथ ही बिजली कड़कने पर **शिवा नो वर्षाः सन्तु**, मन्त्र की कल्पना, शृगाली = गीदड़ी के चिल्लाने पर- **शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः** याजुष मन्त्र का विनियोग बोलते हुये शकुनि से प्रार्थना ग्राम सीमा में लगे आम पीपल आदि वृक्ष से प्रार्थना कहाँ तक उचित है? मेरी दृष्टि से ऐसे ऐसे विनियोगों से वेद या वेदार्थ की रक्षा सम्भव नहीं। ऐसे विनियोग वेदों को उपहासास्पद ही सिद्ध करेंगे। ये ही सब कारण रहे जिनसे मन्त्रानर्थक्यवाद प्रचलित हुआ और उसका निराकरण करने हेतु कभी आचार्य यास्क को और कभी महर्षि जैमिनि को अपने शिष्यों सहित शास्त्र समर में भाग लेना पड़ा। अब भी सतत प्रयत्नशील रहने की आवश्यकता है।

किमधिकं सुविज्ञेषु

●

(इतिवृत्तम् का शेष पृष्ठ 14)

नगरी में कन्याओं द्वारा वैदिक कर्मकाण्ड सम्पन्न कराना किसी चमत्कार से कम नहीं है।

एतदतिरिक्त विविध संस्थानों एवं विद्यालयों द्वारा आयोजित अनेक प्रतियोगिताओं एवं परीक्षाओं में भी विद्यालयीय प्रतिभाशालिनी कन्यायें सर्वोच्च स्थान रखकर अपना कीर्तिमान स्थापित कर रही हैं। संस्कृत भारती की ओर से संस्कृत सप्ताह के अन्तर्गत आयोजित ''**प्रौद्योगिक क्षेत्रे संस्कृतस्यावदानम्**'' विषयक वाद-विवाद प्रतियोगिता में ब्र. प्रियङ्का ने प्रथम स्थान प्राप्त किया। तथा **सूत्रान्त्याक्षरी एवं संगीत प्रतियोगिता** में प्रथम तथा द्वितीय दोनों स्थान विद्यालयीय छात्राओं क्रमशः कस्तूरी, विद्या, कौमुदी तथा सुधा ने प्राप्त किया। आर्य समाज हनुमान् रोड दिल्ली में श्री कृष्ण जन्माष्टमी के उपलक्ष्य में **आर्य समाज की दृष्टि में श्रीकृष्ण** विषयक भाषण प्रतियोगिता में ब्र. जागृति आर्या ने प्रथम स्थान प्राप्त किया। ब्र. प्रियङ्का एवं सञ्जीवनी विद्यालय की ही दो छात्राओं ने बी.एय.यू. से एम.ए. की प्रवेश परीक्षा में तृतीय एवं चतुर्थ स्थान प्राप्त किया। यहीं की छात्रा मनीषा शर्मा अलीगढ़ का बैडमिण्टन खेल की राष्ट्रीय टीम में चयन हुआ है। इन सभी प्रतिभाशालिनी कन्याओं को हमारा हृदय से अनन्त आशीर्वाद। ये सभी कन्यायें जीवन के सभी क्षेत्रों में पूर्ण सफलता प्राप्त कर यश की वृद्धि करें। इस प्रकार यह विद्यालय निरन्तर सर्वविध उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा है। तथा प्रभु के आशीर्वाद से आप सब के प्रेम पूर्ण सम्बल से तथा हम सभी के तप, त्याग एवं पुरुषार्थ से इसी प्रकार दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि को प्राप्त करता रहेगा।

परमपिता परमेश्वर सबको सद्बुद्धि दे। बस यही प्रार्थना है। ●

स्वतन्त्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका

– आशा रानी व्होरा

पटियाला की राजकुमारी साहब कौर

रानी साहब कौर का जन्म पंजाब के पटियाला रियासत में 18वीं सदी में हुआ। वह बारी दोआब के राजा जयमल सिंह की पत्नी थी। जिन दिनों लार्ड वेलेजली अपनी कूटनीति का जाल फैला रहा था, पंजाब की छोटी-छोटी रियासतें अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए अपनी सेनाओं का पुनर्गठन कर रही थीं। रानी कौर का भाई साहब सिंह एक कमजोर, ऐय्याश और अयोग्य शासक था पर साहब कौर में रणकौशल, वीरता, प्रशासन क्षमता जैसे पुरुषोचित गुण थे, जिससे उनकी कीर्ति दूर-दूर तक फैली थी। अपने भाई के राज्य को खतरा देखकर वहां के सरदारों के अनुरोध पर वह पति की अनुमति से, पटियाला आ गई और भाई के साथ शासन प्रबंध सम्भालने लगीं। राज्य की शासन-व्यवस्था सुधर गई।

सन् 1799 में अंग्रेज सेनापति सर टामस ने जींद पर आक्रमण किया। इसके बाद वह पंजाब की अन्य रियासतों पर अधिकार करता, इसके पूर्व रानी साहब कौर ने मध्यस्थता करके सर टामस की सिक्खों से सुलह करा दी। पर साहब सिंह को उसके कुछ साथियों ने रानी के विरुद्ध भड़का दिया और रानी कौर अपने भाई द्वारा बंदी बना ली गईं। लेकिन मौका पाकर वह बहादुर, चतुर रानी कैद से भाग निकलीं। इसके बाद संदर्भ मिलता है कि जीवन के अन्तिम दिन उन्होंने अपने पति राजा जयमल सिंह के साथ भवानीगढ़ किले की कैद में बिताये। इसका मतलब है, बाद में पति-पत्नी दोनों को ही अंग्रेजों से टक्कर लेनी पड़ी होगी।

चुआड़ विद्रोह की नेत्री
रानी शिरोमणि

चुआड़ लोग गरीब आदिवासी किसान थे, जिन्हें जमींदार विद्वेष से नीच जाति की संज्ञा में चुआड़ (जैसे हिन्दी में चमार) कहते थे। बीरभूम, बांकुरा जिले के दक्षिण-पश्चिम का यह अंचल अंग्रेजी राज्य से पहले 'जंगल महाल' कहलाता था। कुछ वर्ष पूर्व यही हुआ पहला विद्रोह, जमींदारों का विद्रोह था। यह दूसरा विद्रोह चुआड़ 'पाइको' या सिपाहियों द्वारा उससे बड़े पैमाने पर किया गया था। इसलिए कि किसानों की संगठित शक्ति 'पाइकों' को हटा कर उनकी जगह बाहर से पुलिस लायी गई थी। चुआड़ों की पुश्तैनी जमीनें छीनकर पूर्व विद्रोही जमींदारों को दे दी गयी थी कि वे शांत रहें। बेकार हो गए गरीब किसान जीवन-रक्षा का उपाय न देख अत्याचार का बदला लेने के लिए कटिबद्ध हो गए। उन्होंने विद्रोह कर दिया।

एक बड़ा हमला कर उन्होंने 124 गाँव लूटकर जमींदारों से जमीनें छीन लीं। जमींदारियों सम्बन्धी कागज-पत्र नष्ट कर दिए गए। चुआड़ों ने दुर्ग निर्माण

कर शक्ति बढ़ा ली। लगान देना बन्द कर दिया। अंचल की प्रधान रानी शिरोमणि थीं। रानी ने ऐलान किया, ''पूरे जंगल महाल से राजस्व देना बन्द। जो राजस्व लेने आयेगा, जिन्दा नहीं लौटेगा।''

जिला कलेक्टर ने रिवेन्यू बोर्ड को चेतावनी दी, चुआड़ विद्रोह न दबाया गया, तो हालत खराब होगी। इधर कुछ देशभक्त जमींदार भी रानी के साथ हो लिये। शेष जमींदार, सरकारी अफसर, कर्मचारी, तहसीलदार सब भागकर मिदनापुर में जा छिपे। कलेक्टर की नींद हराम हो गयी।

रानी शिरोमणि ने 16-17 मार्च 1798 को अंग्रेजों पर चुआड़ों के हमले की योजना बनाई। 16 मार्च को आनन्दपुर पर हमला करके कम्पनी के कुछ सिपाही मार डाले गए। 17 मार्च को मिदनापुर शहर पर आक्रमण किया जाना था। मिदनापुर के अंग्रेज कलेक्टर ने उसी दिन कर्नल डान को लिखा, ''आज रात चुआड़ों द्वारा मिदनापुर शहर लूटा जाएगा। इसलिए खजाना बचाकर मैं उसे आपके पास भेजना चाहता हूँ।'' इस पर कम्पनी के दीवान द्वारा झूठी अफवाह फैलाई गयी कि मिदनापुर में बहुत-सी अंग्रेजी फौज बुला ली गयी है। इस खबर से बेचारे गरीब चुआड़ डर गये और उन्होंने उस दिन मिदनापुर पर हमले का विचार बदल दिया।

दूसरे दिन से अंग्रेजों की दमन-कार्रवाइयाँ शुरू हो गयीं। 6 अप्रैल 1799 को रानी शिरोमणि की जमींदारी के कर्णगढ़ और आवासगढ़ दोनों किलों पर अंग्रेजों ने कब्जा कर लिया। कर्णगढ़ से रानी शिरोमणि को गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें मिदनापुर लाया गया। यह खबर मिलते ही विद्रोहियों की विशाल भीड़ ने अंग्रेजों को आ घेरा। खाद्य सामग्री के अभाव में सरकारी सेना किले खाली कर गयी। अंग्रेजों की हार हुई। जून 1799 में उड़ीसा के मराठा अधिकृत अंचल के 'पाइक' भी साथ आ मिले। शक्ति बढ़ जाने से अनेक स्थलों पर अंग्रेजों से चुआड़ों की सशक्त मुठभेड़ें हुईं।

अंग्रेज समझ गए कि फौज के बल पर यह विद्रोह नहीं दबाया जा सकेगा। उन्होंने एक निर्णय लिया- 'पाइकों' को उनकी जमीनें वापिस दे दी जायेंगी। जंगल महाल में शान्ति की जिम्मेदारी वहीं के जमींदारों पर होगी। राजस्व की कमी से जमींदारों की नीलामी नहीं होगी, न ही 'पाइकों' की जमीनें जमींदारों को दी जायेंगी।

अंग्रेजों ने पहले दमन-नीति से व फिर कूटनीति से काम ले पाइकों, जमींदारों, गरीब चुआड़ों सभी को कुछ सुविधाएँ देकर विद्रोह शांत कर दिया। दमन-कार्रवाइयों के दौरान विद्रोही चुआड़ों का संगठन छिन्न-भिन्न हुआ। वे जान बचाकर एक परगने से दूसरे परगने में भागते फिरे। पर उन्होंने भी अंग्रेजों को कम हानि नहीं पहुँचाई।

दोनों ओर जान-माल की काफी हानि हुई। पर अन्तिम जीत दमन से नहीं, शिकायतों के समाधान से हुई। यह निश्चित ही रानी शिरोमणि की जीत थी। इसीलिए प्रारम्भिक स्वातंत्र्य-संग्राम के इतिहास में उनका नाम अमर है।

●

सामान्य रोगों की सुगम चिकित्सा

– डा० अजीत मेहता

बुढ़ापा दूर रखने और यौवन की रक्षा के लिये–

आँवलें के मौसम में नित्य प्रातः व्यायाम या भ्रमण के बाद दो पके पुष्ट हरे आंवलों को चबाकर खायें और यदि इस प्रकार कच्चा आंवला न खा सकें तो उनका रस दो चम्मच और शहद दो चम्मच मिलाकर पीयें। जब आंवलों का मौसम न रहे तब सूखे आंवलों को कूट-पीसकर कपड़े से छानकर बनाया गया आंवलों का चूर्ण तीन ग्राम (एक चम्मच की मात्र से) सोते समय रात को अन्तिम वस्तु के रूप में शहद में मिलाकर या पानी के संग लें। इस तरह तीन-चार महीनों तक प्रतिदिन आंवलों का प्रयोग करने से मनुष्य अपनी काया-पलट कर सकता है। निरन्तर प्रतिदिन सेवन करने से भूख और पाचन-शक्ति बढ़ जाती है, गहरी नींद आने लगती है, सिरदर्द दूर हो जाता है, मानसिक और मर्दाना शक्ति बढ़ती है, दाँत मजबूत हो जाते हैं, बाल काले व चमकदार हो जाते हैं, काँति, ओज और तेजस्विता की वृद्धि होती है और मनुष्य बुढ़ापे में भी जवान बना रहता है। आंवलों में रोग-निरोधक गुण होने के कारण स्वतः ही रोगों से बचाव होता है और मनुष्य सदैव नीरोग रहकर लम्बी आयु प्राप्त करता है।

विशेष– 1. आंवले के प्रयोग के साथ सात्विक भोजन करें। 2. आंवला एक उच्च कोटि का रसायन है। यह रक्त में से हानिकारक और विषैले पदार्थों को निकालने और वृद्ध मनुष्यों को पुनः जवान बनाने में सक्षम है। इसके नियमित सेवन से रक्त-वाहिनियाँ लचकीली बनी रहती हैं और उनकी दीवारों की कठोरता दूर होकर रक्त का परिभ्रमण भली-भाँति होने लग जाता है। रक्त-वाहिनियों में लचक बनी रहने के कारण मनुष्य का न तो हृदय फेल होता है, न ही उच्च रक्तचाप का रोग होता है और न ही रक्त का थक्का बन जाने से रुकावट के कारण मस्तिष्क की धमनियाँ फटने पाती हैं। 3. आंवलों के निरन्तर सेवन से रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र इन सब धातुओं से मलिन या मृत परमाणु देह के बाहर निकल जाते हैं और उनके स्थान पर नूतन और सबल परमाणुओं का प्रवेश हो जाता है। रक्त वाहिनियाँ बुढ़ापे में भी लचकीली बनी रहती हैं, चेहरे की झुर्रियाँ दूर हो जाती हैं और मनुष्य वृद्धावस्था में भी नवयुवकों की भाँति चुस्त और ताकतवर बना रहता है।

सहायक उपचार– 1. **आरोग्यता, लम्बे समय तक यौवन बनाये रखने के लिए-** दिन में बांयी और रात्रि में दायीं नासिका से श्वास लेने की आदत डालने पर मनुष्य चिरकाल तक युवा बना रह सकता है। इसके लिए रात्रि को बायीं करवट सोना चाहिए ताकि दायें नथुने से श्वास लिया जा सके और दिन में आराम और मिश्राम करते समय दाहिने करवट सोयें ताकि बायें नथुने से सांस ली जा सके। 2. बुढ़ापे पर विजय प्राप्त कर यौवन को स्थायी बनाने के लिये डाल के पके पपीते का नियमित सेवन करना चाहिए। पपीता यौवन का टॉनिक है। इसका भरपूर लाभ उठाने के लिए इसे खाली पेट नाश्ते के रूप में उपयोग करना चाहिये। पपीते का फल खाते रहने वाले व्यक्ति को तपेदिक, दमा, आँखों के रोग,

अपच, रक्तहीनता आदि रोग नहीं होते। यह आंतों की सफाई करने में बेजोड़ और पाचन संस्थान के रोगों को दूर करने वाला उत्तम फल है।

समस्त बीमारियों से बचाव–

रात को सोते समय दो काली हरड़ के चूर्ण की फंकी लेकर गुनगुना पानी पीते रहने पर कोई बीमारी नहीं होती। कम से कम सप्ताह में एक बार अवश्य लें।

विशेष– 1. काली हरड़ हानिरहित हल्का विरेचक है। यह वात पित्त कफ़ से उत्पन्न दोषों को और बलगम को पाखाना द्वारा निकाल देती है। यह न केवल दस्तों द्वारा आंतों में संचित दूषित मल को बाहर निकालती है बल्कि रोग से मुकाबला करने की शक्ति भी देती है। हरड़ 'सारक' और 'रसायन' एक साथ दोनों गुणों से युक्त है। सारे शरीर में स्थित दूषित पदार्थ को आन्त्र में खींचकर लाकर मल द्वारा बाहर निकाल देती है। शरीर के विभिन्न भागों में दूषित दोष, धातु और मल से मार्ग-अवरोध होता है, जिसके कारण विभिन्न प्रकार के रोगों के होने की संभावना होती है, हरड़ 'स्रोतोविबन्धहर' होने के कारण मार्ग-अवरोध दूर कर स्रोतों और शरीर की शुद्धि करती है और प्रत्येक अंग तथा हृदय, मस्तिष्क, पेट, रक्त आदि को प्राकृतिक दशा में नियमित करती है। इसी कारण हरड़ का सेवन करने वाला बीमारियों से बचा रहता है। हरड़ में 'रसायन' गुण होने के कारण यह शरीर के सप्त धातुओं को शुद्ध और पुष्ट करती है तथा शरीर में शक्ति, स्फूर्ति और ताज़गी प्रदान करती है। शरीर की समस्त क्रियाओं को सुधारती एवं स्वाभाविक बनाती है। शरीर के सूक्ष्म कोषों को स्वस्थ दशा में बनाये रखती है और असमय वृद्धावस्था से दूर रखती है। 2. रोजाना रात को कुछ दिन सेवन करने से फुन्सियाँ, दाने और मुँहासे आदि नहीं निकलते। फुन्सियों पर हरड़ पीसकर लेप करने से वे ठीक हो जाती हैं। 3. बल-बुद्धि बढ़ाने अथवा मल-मूत्र साफ लाने के लिए इसे भोजन के साथ खाएं। भोजन पचाने के लिए जुकाम, फ्लू, वात एवं कफ़ विकार में भोजन के बाद खाएं। 4. हरड़ चबाकर खाने से भूख बढ़ती है। पीसकर चूर्ण खाने से पेट साफ होता है। उबालकर (भाप में पकाकर) खाने से दस्त बंद होते हैं और मल बंधता है। भूनकर खाने से वात, पित्त और कफ़-त्रिदोषों को समाप्त करती है। 5. कायाकल्प के समान सम्पूर्ण लाभ प्राप्त करने के लिए वर्षा ऋतु में सेंधा नमक के साथ, शरद ऋतु में शर्करा के साथ, हेमन्त में सोंठ के साथ, शिशिर में पिप्पली के साथ, वसन्त में मधु के साथ तथा ग्रीष्म में गुड़ के साथ हरड़ का चूर्ण खाना चाहिए। 6. नमक के साथ हरड़ कफ़ को, शक्कर के साथ पित्त को, घी के साथ वात विकारों को और गुड़ के साथ त्रिदोष या समस्त रोगों को दूर करती है। 7. अर्श (बवासीर), अजीर्ण, गुल्म, वात रक्त तथा शोथ (सूजन) में हरड़-चूर्ण गुड़ के साथ देने से लाभ होता है। विषम ज्वर में मधु के साथ, अम्लपित्त, रक्तपित्त, जीर्ण-ज्वर में मुनक्का के साथ, श्लीपद, फाइलेरिया, दाद, खाज, पाण्डु रोग में गोमूत्र के साथ, आमवात, आंत्रवृद्धि वृषण वृद्धि पर एरण्ड के तेल के साथ लेना चाहिए। **मात्रा–** एक ग्राम से तीन ग्राम तक।

सावधानी– दुर्बल, थके, पतले, व्रत वाले, गर्म प्रकृति वाले, गर्भवती स्त्री को उपयोग सावधानी से करना चाहिए।

●

दुःखद अवसान

1. सारस्वत साधना के मनीषी पद्मश्री **डा. कपिलदेव द्विवेदी** इसी 30 अगस्त को 93 वर्ष की आयु में इस धराधाम को छोड़ कर परलोकगामी हो गये। वे संस्कृत जगत् के गद्य-पद्य दोनों विधा के विश्वप्रसिद्ध विद्वान् थे। आपके 91वें जन्मदिवस पर आपको समर्पित अभिनन्दन ग्रन्थ जिसमें **संस्कृत वाङ्मय में विज्ञान** से सम्बन्धित लेखों का भी अच्छा संग्रह है सभी के लिये पठनीय व प्रेरणास्पद है। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के आप सुयोग्य स्नातक रहे हैं। गुप्ता परिवार में जन्म लेने के बाद भी आप यजुर्वेद, सामवेद इन दो वेदों को कण्ठस्थ करके यथा नाम तथा गुणः द्विवेदी उपाधि से सुभूषित हुए यह महर्षि दयानन्द के वैदिक मन्तव्यों की क्रियात्मक संस्तुति है।

आपकी श्रद्धाञ्जलि सभा में पाणिनि कन्या महाविद्यालय की ओर से मुझे भी शान्ति यज्ञ सम्पन्न कराने व श्रद्धाञ्जलि देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं आज पहली बार उनके आवास पर गई थी यद्यपि इससे पूर्व भी दो बार अपने जीवन काल में ही विद्यालय से कन्याओं को व आचार्या को बुलाकर वे वेद पारायण कर चुके थे अस्तु। उस छोटे से गाँव नुमा शहर में उनके निजी मकान की सादगी को देखकर मुझे लगा कि यह किसी साधक की तपः स्थली है। उनकी श्रद्धाञ्जलि सभा में आस-पास के दूर-दूर से आये सभासद् से लेकर प्रोफेसर, इंजीनियर, ज्योतिषी तक जो स्वयं वृद्ध हो रहे थे उनके मुँह से इन्होंने मुझे पढ़ाया था, मुझे कॉलेज में यह नसीहत दी थी, मुझे अपने पुत्र से बढ़कर प्यार दिया था आदि बातें सुनकर उनके प्रति इन सबका गहरा सम्मान व आत्मीयता द्योतित हो रही थी। अस्तु। परिवार के सभी सदस्यों का एकजुट होकर अपने पूज्य पिताजी के आदर्शों पर चलना यही उनका क्रियात्मक श्राद्ध तर्पण व उनकी सच्ची श्रद्धाञ्जलि है। इसका ध्यान सभी भैया-भाभी रखेंगे ऐसी मैं आशा करती हूँ।

2. इसी के साथ महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित प्रथम आर्य समाज काकड़वाड़ी मुम्बई के वर्षों से मन्त्री रहे आदरणीय **श्री राजेन्द्र नाथ पाण्डेय जी** जिन्हें प्यार व सम्मान से सभी चाचा जी नाम से सम्बोधित करते थे उनका भी दुःखद निधन इसी 30 सितम्बर को सायम् 3:30 बजे अचानक घबराहट होने पर आर्य समाज से हास्पिटल ले जाते हुए हो गया। वे गुरुकुलों के आर्ष वैदिक परम्परा के अन्धभक्त व पूर्ण संरक्षक थे। अपने विद्यालय के प्रति उनका गहरा लगाव था अपनी दोनों आचार्या जी को वे अपनी सगी बहन से बढ़कर मानते थे व हमें अपनी प्रिय पुत्रियाँ। वे चाची जी को अकेला छोड़कर चले गये इस दुःख में सम्पूर्ण पाणिनि परिवार चाची जी के साथ है। हम अपनी सम्मान्या चाची जी से अपेक्षा करते हैं कि वे अपने उदार आँचल में सबको समेटकर सबको अपना प्रियपात्र बनाकर इस दुःख सागर से पार हो जायेंगी।

● **(सम्पा0)**

हम भारत से क्या सीखें?
द्वितीय भाषण

– प्रो0 मैक्समूलर

हिन्दुओं का चरित्र–

हम भारत को थोड़ी देर के लिये अलग कर देते हैं। फिर भी जब हमें इस प्रकार की राष्ट्रीय निन्दाओं से काम पड़ता है तो मैं उस निन्दा की निन्दा किये बिना नहीं रह सकता। मेरा विचार है कि किसी भी समूचे राष्ट्र के लिये इस प्रकार के निन्दात्मक शब्दों को प्रयोग में लाने की विचार प्रणाली को निरुत्साहित किया ही जाना चाहिये। ऐसा यह सोचकर नहीं किया जाना चाहिये कि ये राष्ट्रगत दोषारोपण आत्मवंचक एवम् अनुदार मस्तिष्क की उपज हैं तथा ये अस्वस्थ मस्तिष्क ही इन्हें बल एवम् स्थायित्व प्रदान करते हैं, वरन् इनकी निन्दा इसलिये की जानी चाहिये कि वे किसी भी तर्क पर सही नहीं उतरते और सदैव ही भ्रान्त मान्यताओं पर आधारित होते हैं। थोड़ी देर के लिये मान लीजिये कि एक व्यक्ति यूनान की यात्रा कर रहा है और रास्ते में उसके सब परिचित साथी जो दुर्भाग्य से यूनानी ही हैं। उसे ठग लेते हैं या लुटेरों का एक छोटा सा दल उसे लूट लेता है तो क्या इससे यह परिणाम निकाल लेना भ्रमात्मक न होगा कि सभी यूनानी ठग या बटमार हैं? क्या हम को यह मान लेना चाहिये कि सभी यूनानी चाहे वे अतीत काल के रहे हों या वर्तमान काल के लुटेरे ही हैं? या हम ये मान लें कि यूनान में बटमारी सिद्धान्ततः मान्य है? मान लें कि कलकत्ता, बम्बई या मद्रास का कोई व्यक्ति गोरे जज के सामने लाया जाता है या कचहरियों में कुछ पैसों के बदले झूठी गवाही देने वाले पेशेवर गवाह जज के सामने लाये जाते हैं और वे झूठ बोलकर न्याय को एवम् न्यायाधीश को गुमराह करने का प्रयत्न करते हुए पाये जाते हैं तो आजकल के तर्क प्रिय युग में यह निष्कर्ष निकाल लेना क्या अति भ्रमपूर्ण नहीं होगा कि भारत के सभी निवासी झूठे हैं और ये सदा न्याय को गुमराह करने की कोशिश करते हैं? आपको एक और बात का भी विशेष ध्यान रखना चाहिये कि उस विशाल देश में एक-दो नहीं तीसों करोड़ आदमी रहते हैं तो एक दो आदमी या सैकड़ों आदमियों या हजारों आदमियों को ही देख सुन कर आप सभी तीस-तैंतीस करोड़ आदमियों को असत्यभाषी एवम् असत्यपोषक कैसे मान लेंगे? यह तो कोई उचित बात नहीं है। यदि इस विशाल देश के कुछ लाख व्यक्ति भी अंगरेजी अदालतों के समक्ष चोरी या डकैती या जालसाजी के अभियुक्त के रूप में आकर दण्ड से बचने के लिये झूठ का पल्ला पकड़ते हैं तो क्या हमें यह मान लेना चाहिये कि पूरा का पूरा हिन्दू राष्ट्र ही असत्य को सिद्धान्ततः स्वीकार करता है? आप एक बार फिर कल्पना करें कि एक

अंगरेजी जहाज का अंगरेज नाविक हैवान किसी काले जज के सामने अभियुक्त के रूप में लाया जाता है। इस कल्पना में आप इस बात का विशेष ध्यान रखें कि जज अभियुक्त के लिये पूर्णरूपेण विदेशी है उसके कानून भिन्न हैं, उसका न्याय क्रम भिन्न है, न्याय पद्धति एवम् भाषा भी भिन्न है। क्या आप लोगों को विश्वास है कि उक्त नाविक उक्त विदेशी जज के सामने सत्य, केवल सत्य ही बोलेगा और सत्य के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कहेगा? क्या आप यह भी विश्वास कर लेना चाहेंगे कि उक्त नाविक के सभी साथी संगठित रूप में आकर न्यायालय के समक्ष दण्ड-नीति का कुछ विचार किये बिना ही केवल सत्य ही बोलेंगे और सत्य के अतिरिक्त वे और कुछ भी न कहेंगे और अपने चिर दिनों के साथी को दण्ड दिलाने में सहायक होंगे? मेरा अपना तो ऐसा विश्वास है कि वह नाविक भी वही कहेगा और उसके अंगरेज साथी भी वही कहेंगे, जिससे अभियुक्त किसी प्रकार से दण्डित होने से बच जाय भले ही उनका कथन सत्य हो या सत्य के अतिरिक्त और कुछ। आप भी विश्वास रखें और आपको विश्वास रखना चाहिये कि ऐसा न करना देवत्व भले ही हो पर मानव सुलभ नहीं है। केवल जज के विदेशी होने का प्रभाव भी उसमें बहुत कुछ काम करता है और इस मनोवैज्ञानिक सत्य को स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई भी चारा नहीं है।

निष्कर्ष निकालने के नियमों में एक प्रकार की सामान्यता होती है परन्तु उन नियमों का प्रयोग सभी विषयों के साथ एक सा नहीं किया जाता या नहीं किया जाना चाहिये। भारत में एक कहावत है जिसका अर्थ है कि हाँडी के एक चावल को ही परख लेना हाँडी के सभी चावलों की परख है। चावल के लिये यह नियम ठीक है, परन्तु इसी नियम के अनुसार मानवसमाज की परख करने पर हम एक भयंकर भूल कर बैठेंगे। मानव मानव है, चावल नहीं। उसके कार्य व्यवहार विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न होते हैं और प्रायः एक ही परिस्थिति में पड़े विभिन्न व्यक्तियों की प्रतिक्रिया भी विभिन्न होती है। ऐसी दशा में सभी मनुष्यों के लिये अलग-अलग विचार करने की आवश्यकता है। एक बार की बात है कि किसी अंगरेज पादरी को किसी ऐसे फ्रांसीसी बच्चे का बपतिस्मा करना पड़ा, जिसकी नाक कुछ लम्बी थी। अब वह पादरी स्वदेश लौटकर अपने देश वालो में फ्रांस की चर्चा करने पर प्रायः कह बैठता है कि फ्रांस के बच्चों की नाक बड़ी लम्बी होती है। क्या उस पादरी के उस निष्कर्ष को आप लोग त्रुटिपूर्ण न कहेंगे? आप सावधान रहें कि कहीं आप भी भारतीयों के चारित्रिक निष्कर्ष को प्राप्त करने में उसी प्रकार की असावधानी तो नहीं कर रहे हैं।

मुझे तो परेशानी तब होती है जब मैं किसी को पूरी हिन्दू जाति (भारतीय) के लिये किसी सामान्य

विशेषण का प्रयोग करते देखता हूँ। मेरे विचार में ऐसा कोई भी विशेषण नहीं है जो भारत ही नहीं किसी भी अन्य देश के सभी निवासियों के प्रति सामान्य रूप से व्यवहृत किया जा सके। जब भी मैं किसी को ''भारत के लोग'' या ''सभी ब्राह्मण'' या ''सभी बौद्ध'' जैसे शब्दों से कोई वाक्य शुरु करते सुनता हूँ तो मुझे एक प्रकार की पीड़ा का-सा आभास होता है, जिसे स्वीकार करने में मुझे किसी प्रकार की लज्जा नहीं है। मैं जानता हूँ कि इन शब्दों से प्रारम्भ होने वाले वाक्य में आगे जो कुछ भी कहा जायगा वह अवश्य ही गलत होगा, पूर्ण रूप से गलत होगा और गलत के अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं होगा। जितना अन्तर एक अंगरेज एक फ्रांसीसी या एक जर्मन के बीच है उससे कहीं बड़ा अन्तर भारत के एक अफगान, एक सिख, एक पंजाबी, एक बंगाली तथा एक द्रविड़ के बीच है। इन सभी को मिलाकर एक हिन्दू जाति है। यदि हम सभी भारतीयों के लिये किसी भी एक निन्दासूचक विशेषण का प्रयोग करते हैं तो उसका तात्पर्य यह होता है कि हमने सभी को एक ही लाठी से हाँकने का प्रयत्न किया है आप ही लोग सोचें कि जिस जाति में इतने अधिक प्रकार के लोग शामिल हों उसकी भली या बुरी विशेषता एक ही शब्द से कैसे आंकी जा सकती है।

मेरी इच्छा है कि मैं आप लोगों के सामने **सर जान मालकम** द्वारा लिखित कुछ वाक्यों को दोहराऊँ। उन्होंने कहा है कि ''जिन लोगों के पास देखने वाली आँखे हैं, वे बड़ी ही सरलता से देख सकते हैं कि जिन वर्गों को मिलकर हिन्दू जाति बनी है, उनमें अनेक चारित्रिक वैभिन्य है। जिस हिन्दू राष्ट्र जाति के लिये हम इस प्रकार के अनादरसूचक शब्दों का प्रयोग करते हैं, उसमें इतने अधिक भिन्न प्रकार के लोग हैं कि उन्हें एक ही डंडे से हाँकना अवश्य ही भारी भूल होगी।'' सर जान मालकम के अनुसार बंगाल के लोग शारीरिक दृष्टि से कमजोर होते हैं परन्तु उनका मस्तिष्क अत्यधिक विकसित होता है और थोड़ी भीरुता उनमें अवश्य होती है। दक्षिण बंगाल में हिन्दुओं की निम्न जातियों का निवास है परन्तु उनकी भी विशेषतायें उच्च हिन्दुओं की ही तरह हैं। अपने विवरण को चालू रखते हुए उन्होंने लिखा है कि ''ज्योंही आप बिहार प्रान्त के जिलों में प्रवेश करते हैं त्योंही आपको हिन्दू एक जाति के रूप में दिखायी देने लगते हैं। सामान्यतया उनका कद ही अधिक ऊँचा नहीं होता और न ही केवल उनकी शारीरिक बनावट ही सुगठित होती है, बल्कि वे मानसिक रूप से भी बंगालियों से भिन्न होते हैं और उनमें मानवता के अनेक दुर्लभ गुण पाये जाते हैं। वे साहसी, उदार, मानवतापूर्ण एवम् अतिथि सेवी होते हैं और उनकी सत्यनिष्ठा उतनी ही प्रशंसनीय है जितना उनका साहस।'' ●

(शेष अगले अंक में)

अर्जुनरावणीयम्

द्विगुपादे (द्वितीयाध्याय-चतुर्थपादे)

डा0 विजयपाल शास्त्री, प्रवाचक
राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थानम्, जयपुर

गतांक से आगे–

1. अशाला च- गोपालसभम्।

यदि विद्वज्जनैरुक्ता गुणास्तस्य न विस्मयः।
यो भाषयत्यरण्येषु गोपालसभमादृतम्।।28।।

अन्वयः– यः अरण्येषु आदृतं गोपालसभं (गुणान्) भाषयति। तस्य गुणाः यदि विद्वज्जनैः उक्ताः, न विस्मयः।

अर्थ– जो राजा अरण्यों में आदर-भाव से युक्त गोपाल-मण्डली से भी अपने गुणगान करवाता है, उसके गुणों का वर्णन यदि विद्वान् लोग करते हैं तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।।28।।

25. विभाषा सेनासुराच्छायाशालानिशानाम्, सेना-स्वसेनया, परसेनम्। सुरा-यवसुरम्, पिष्टसुराम्। छाया-स्वच्छायया, परच्छायम्। शाला- गोशालम्, अश्वशालां वा। निशा-.....।

स्वच्छायया परच्छायं यो यथा जयति प्रभुः।
सह स्वसेनया युद्धे परसेनमवज्ञया।।29।।

अन्वयः– यः यथा अवज्ञया स्वच्छायया परच्छायं जयति तथा युद्धे सहस्रसेनया (अवज्ञया) परसेनं जयति।

अर्थ– वह राजा अर्जुन जैसे अवज्ञापूर्वक अपनी छाया-कान्ति से परच्छाया दूसरों की अथवा शत्रुओं की छाया कान्ति को जीत लेता है, उसी प्रकार अवज्ञा से अपनी सहस्रसेना बहुसङ्ख्य सेना द्वारा परसेन- शत्रुसेना को जीत लेता है।।29।।

अपीत्वैव यवसुरं तथा पिष्टसुरां जनैः।
मत्तैरिव गुणा यस्य गीयन्ते पुरवासिभिः।।30।।

अन्वयः– पुरवासिभिः जनैः यवसुरं तथा पिष्टसुराम् अपीत्वा एव मत्तैः इव यस्य गुणाः गीयन्ते।

अर्थ– पुरवासी जनों द्वारा यवसुरम्- जौ की बनी शराब तथा पिष्टसुरा-पिष्ट आटे से बनी शराब को बिना पिए ही मत्तों की तरह जिसके गुण गाए जाते हैं।।30।।

गोशालमश्वशालां वा सम्प्रविश्यानिवारिताः।
यथेष्टं यस्य गृह्णन्ति विप्रा गाश्च तुरङ्गमान्।31।

अन्वयः– विप्राः यस्य गोशालम् अश्वशालां वा सम्प्रविश्य अनिवारिताः गाः तुरङ्गमान् च यथेष्टं गृह्णन्ति।

अर्थ– विप्रजन जिस की गोशाला या अश्वशाला में बेरोकटोक प्रवेश करके इच्छानुसार गायों और घोड़ों को ले लेते हैं।।31।।

26. परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः- मयूरीकुक्कुटौ, शुकसारिके।

मयूरीकुक्कुटावेताविमे च शुकसारिके।
क्रीडाप्रियस्य यस्येति दर्शयन्ति नियोगिनः।32

अन्वयः– क्रीडाप्रियस्य यस्य नियोगिनः- एतौ

मयूरीकुक्कुटौ इमे च शुकसारिके इति दर्शयन्ति।

अर्थ– जिस क्रीडाप्रेमी राजा के नियोगी (नौकर)- 'ये मयूरी-कुक्कुट (मोरनी व मुर्गा) हैं तथा ये शुक-सारिका (तोता-मैना) हैं' इस प्रकार कह कर उसे इन्हें दिखाते हैं। अर्थात् सुन्दर पक्षियों को दिखाकर उसका मनोरंजन करते हैं।।32।।

27. पूर्ववदश्ववडवौ- अश्ववडवौ।

सदाश्ववडवौ येन पोष्येते प्रियवाजिना।
योनिपोषणहीनस्य कुतो वा बहुवाजिता।।33।।

अन्वयः– येन प्रियवाजिना सदा अश्ववडवौ पोष्येते। योनिपोषणहीनस्य कुतः वा बहुवाजिता?

अर्थ– उस अश्वप्रेमी राजा द्वारा सदा घोड़े व घोड़ी पाले जाते हैं। योनि-मिथुन, घोड़े-घोड़ी के जोड़ों का पालन-पोषण न करने वाले राजा के यहाँ बहुवाजिता घोड़ों की बहुलता कैसे हो सकती है?।।33।।

28. हेमन्तशिशिरावहोरात्रे च च्छन्दसि-छान्दसम्।

29. रात्राह्नाहाः पुंसि- पूर्वरात्रः, अर्धरात्रः। पूर्वाह्णः।

पूर्वरात्रोऽर्धरात्रश्च याचके समुपागते।
दानशून्यो न जातोऽस्य पूर्वाह्णोऽन्येऽपि च क्षणाः।34।

अन्वयः– याचके समुपागते अस्य पूर्वरात्रः अर्धरात्रः पूर्वाह्णः च दानशून्यः न जातः। अन्ये अपि च क्षणाः (दानशून्याः न जाताः)।

अर्थ– याचक के आने पर इस राजा का पूर्वरात्र (रात्रि का पूर्वभाग) अर्धरात्र (रात्रि का मध्य भाग अर्थात् आधी रात) और पूर्वाह्ण (दिन का पूर्वभाग) तथा अन्य क्षण भी दानशून्य नहीं रहे। अर्थात् वह राजा प्रतिक्षण याचकों को दान देने के लिए उद्यत रहता है।।34।।

30. अपथं नपुंसकम्- अपथम्।

यत्प्रतापभयापेतदस्युपाते महीतले।
भ्रमतामध्वनीनानां नापथं दृश्यते क्वचित्।35।

अन्वयः– यत्प्रतापभयापेतदस्युपाते महीतले भ्रमताम् अध्वनीनानां क्वचित् अपथं न दृश्यते।

अर्थ– जिस राजा के प्रताप के भय से दस्युओं के उपद्रव से रहित भूतल पर घूमने वाले पथिकों के लिए कोई स्थान अपथ (अमार्ग) नहीं रहा।।35।।

31. अर्धर्चाः पुंसि च- मधुम्, मधुनः।
चक्राह्वयूथान्, हंसयूथानि। कर्म, कर्माणम्। पद्यः शङ्खश्च। कर्णाभरणशङ्खानि।

निशासु शशिशुभ्रासु सौधोत्सङ्गविहारिणः।
पाययन्ते नरा यस्य सोत्पलम्मधुमङ्गनाः।।36।।[1]

अन्वयः– यस्य नराः शशिशुभ्रासु निशासु सौधोत्सङ्गविहारिणः अङ्गनाः सोत्पलं मधुं पाययन्ते।

अर्थ– जिस के प्रजाजन चान्दनी रातों में सौधतल पर विहार करते हुए अपनी अङ्गनाओं को उत्पल सहित मधु (आसव) पिलाते हैं।।36।।

●

(शेष अगले अंक में)

1. 'मकरन्दस्य मद्यस्य माक्षिकस्यापि वाचकः।
अर्धर्चादिगणे पाठात्पुन्नपुंसकयोर्मधुः।।'
इति मल्लिनाथो रघुवंश-सञ्जीवन्याम्- 9, 36;